Semester – III: THEORY

Common Paper

Paper-7 Education in Emerging Indian Society and School Administration

Unit 1: Nature of Education

Sub Unit

1.1. **- Meaning and definition of education - (शिक्षा का अर्थ और परिभाषा)** – किसी भी शब्द के अर्थ को समझने का सबसे सहज

तथा स्वाभाविक ढंग उस शब्द के शाब्दिक अर्थ को जानना है। शाब्दिक अर्थ से शब्द की उत्पत्ति का ज्ञान होने के साथ–साथ उसका अर्थ भी कुछ सीमा उचित ही होगा। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की 'शिक्ष' धातु में अ प्रत्यय लगाने से बना है। शिक्ष' का अर्थ है सीखना और सिखाना से सम्बन्धित है। अतः 'शिक्षा' शब्द का शाब्दिक अर्थ हुआ–सीखने व सिखाने की क्रिया। 'शिक्षा' शब्द के लिए अंग्रेजी में 'ऐजुकेशन' (Education) शब्द का प्रयोग किया जाता है। ऐजुकेशन शब्द लैटिन भाषा के 'ऐजुकेटम' (Educatum) शब्द से विकसित हुआ है तथा 'एजुकेटम' शब्द इसी भाषा के 'ए' (E) तथा 'ड्यूको' (Duco) शब्दों से मिलकर बना है। ए (E) का अर्थ है–अंदर से, जबकि ड्यूको (Duco) का अर्थ है–आगे बढ़ाना। अतः 'ऐजुकेशन' शब्द का शाब्दिक अर्थ है–अंदर से आगे बढ़ाना। प्रश्न यह उठता है कि यहाँ पर अंदर से आगे बढ़ाने से क्या तात्पर्य है। वास्तव में प्रत्येक बालक के अंदर जन्म के समय कुछ जन्मजात शक्तियाँ वीज रूप में विद्यमान रहती हैं। उचित वातावरण के सम्पर्क में आने पर ये शक्तियाँ विकसित हो जाती हैं, जबकि उचित वातावरण के अभाव में ये शक्तियाँ या तो पूर्णरूपेण विकसित नहीं हो पाती हैं अथवा अवांछित रूप ले लेती हैं। स्पष्ट है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति की जन्मजात शक्तियों को अंदर से बाहर की ओर उचित दिशा में विकसित करने का प्रयास किया जाता है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि 'ऐजुकेशन' शब्द का प्रयोग व्यक्ति या वालक की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करने अथवा विकसित करने की क्रिया के लिए किया जाता है।

लैटिन के 'ऐजुकेयर' (Educare) तथा 'ऐजुशियर' (Educere) शब्दों को भी 'ऐजुकेशन' शब्द के रूप में स्वीकार किया जाता है। इन दोनों शब्दों का अर्थ भी आगे बढ़ाना (To Bring Up), बाहर निकालना (To Lead Out) अथवा विकसित करना (To Raise) है। स्पष्ट है कि शिक्षा तथा इसके अंग्रेजी पर्यायवाची 'ऐजुकेशन' (Education) दोनों ही शब्दों का शाब्दिक अर्थ वास्तव में मनुष्य की आन्तरिक शक्तियों को आगे बढ़ाने वाली, विकसित करने वाली अथवा इनका बाह्य प्रस्फुटन करने वाली प्रक्रिया को इंगित करता है। अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि शिक्षा शब्द का अर्थ जन्मजात शक्तियों का सर्वांगीण विकास करने की प्रक्रिया से है। शिक्षा शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने के लिए विभिन्न विद्वानों के द्वारा शिक्षा के अर्थ के सम्बन्ध में प्रकट किए गए विचारों का अवलोकन एवं विश्लेषण करना आवश्यक होगा।

प्राचीन भारत में शिक्षा का अर्थ

प्राचीन भारत में शिक्षा को विद्या के नाम से जाना जाता था। विद्या शब्द की व्यत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'जानना'। इस तरह विद्या शब्द का अर्थ ज्ञान से है। हमारे प्राचीन ग्रंथों मे ज्ञान को मानव का तृतीय नेत्र कहा गया है जो अज्ञान दूर कर सत्य के दर्शन कराने में मददगार होता है। विद्या हमें विनम्र बनना सिखाती है 'विद्या ददाति विनयम्। विद्या हमें जीवन से मुक्त कराती है। 'सा विद्या या विमुक्तये'।

शिक्षा का संकुचित अर्थ

संकुचित अर्थ में शिक्षा बालक को योजनाबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत प्रदान किये जाने वाली एक ऐसी योजना है जिसमें निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति के प्रयत्न किये जाते है। विद्यालय में प्रदान की जाने वाली शिक्षा इसी श्रेणी की होती है। इसमें निश्चित उद्देश्यों वाला प्रत्येक

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

कक्षा अथवा स्तर का एक निर्धारित पाठ्यक्रम होता है जिसे एक निश्चित अध्ययनकाल में शिक्षकों द्वारा पूर्ण कराया जाता है। वास्तव में संकुचित अर्थ मे शिक्षा एक प्रकार से पुस्तकीय शिक्षा तक सीमित है।

शिक्षा का व्यापक अर्थ

शिक्षा के व्यापक अर्थ को प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री टी. रेमण्ड ने इस प्रकार स्पष्ट किया है,'' शिक्षा विकास का वह क्रम है जो बाल्यावस्था से परिपक्वावस्था तक निरन्तर चलता रहता है एवं शिक्षा में मनुष्य अपने आपको आवश्यकतानुसार धीर–धीर भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है।''

डम्बिल के शब्दों मे,'' शिक्षा के व्यापक अर्थ के अंतर्गत वे सभी प्रभाव सम्मिलित होते है, जो मानव को बाल्यावस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त तक प्रभावित करते है।''

मैकेन्जी के शब्दों में,'' व्यापक अर्थ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है, जो जीवन–पर्यन्त चलती रहती है तथा जीवन के प्रत्येक अनुभव से शिक्षा में वृद्धि होती है।''

शिक्षा का वास्तविक अर्थ

शिक्षा के शब्दिक, संकुचित एवं व्यापक अर्थ को स्पष्ट करने से शिक्षा की वास्तविक अवधारण स्पष्ट नही होती है। अब हमारे समक्ष प्रश्न यह उठता है कि हमें शिक्षा का कौन–सा रूप अपनाना चाहिए? शिक्षा का शाब्दिक अर्थ स्वीकार नही किया जा सकता क्योंकि यह जरूरी नही कि शब्दिक अर्थ वास्तविक अर्थ ही हो। इसलिए शिक्षा के सही अर्थ के लिए आवश्यक है कि हम सभी प्रकार के अर्थों को सम्मिलित रूप से लेकर चलें।

शिक्षा के वास्तविक अर्थ को समन्वित रूप से इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है,'' शिक्षा एक ऐसी सामाजिक एवं गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों को विकसित करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है एवं सामाजिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने के योग्य बनाती है। यह सामाजिक एवं गतिशील प्रक्रिया व्यक्ति को उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराते हुये उसके विचार एवं व्यवहार में समाज के लिए कल्याणकारी परिवर्तन लाती है।

शिक्षा की परिभाषा Definition of Education -"मनुष्य में पूर्वनिहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना शिक्षा है।" Education is manifestation of perfection already present in man- – Swami Vivekanand

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया के रूप में स्पष्ट किया। उनके शब्दों में "शिक्षा से मेरा अभिप्राय बालक तथा मनुष्य के शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्तम विकास से है। "By Education I mean an all round drawing out of the best in child and man – body,mind and spirit - Mahatma Gandhi

शिक्षा एक प्रक्रिया है, जिसमें तथा जिसके द्वारा वालक के ज्ञान, चरित्र तथा व्यवहार को ढाला तथा परिवर्तित किया जाता है।" Education is a process in which and by which the knowledge,character and behaviour of the young are shaped and moulded- – Drever

फ्रोबेल के अनुसार – "शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक की शक्तियां बाहर प्रकट होती है।"

बासिंग के अनुसार – "शिक्षा का कार्य व्यक्ति का वातावरण से उस सीमा तक स्थापित करना है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों को स्थाई संतोष प्राप्त हो सके।,"

पेस्टालॉजी के अनुसार – "शिक्षा बच्चों के जीवन की गतिशील तथा लयबद्ध प्रगति है।"

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार,'' शिक्षा का आश्य मस्तिष्क को इस योग्य बनाना है कि वह चिरंतन सत्य को पहचान सके, इसके साथ एकरूप हो सके तथा उसे अभिव्यक्त कर सके।''

कौटिल्य के अनुसार,'' शिक्षा का अर्थ है, देश के लिए प्रशिक्षण तथा राष्ट्र के लिए प्रेम।''

शंकाराचार्य के अनुसार,'' शिक्षा आत्मानुभूति के लिए है।''

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

उपनिषद'' शिक्षा वह है जिसका प्रमुख साध्य मुक्ति है।''

डॉ. भीवराव अम्बेडकर के अनुसार,'' शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्ट विकास से है।''

अरस्तु के अनुसार,'' शिक्षा स्वस्थ्य शरीर मस्तिष्क का निर्माण है।''

शिक्षा के समानार्थी शब्द – शिक्षा के विभिन्न समानार्थी शब्दों का अर्थ इस प्रकार है –

1. **शिक्षण (Teaching)** – यह शिक्षक, छात्र तथा विषय–वस्तु के बीच संबंध स्थापित करता है। यह शैक्षणिक प्रक्रिया (Educative Process) का संकेत देता है।

2. **निर्देश (Instruction)** – निर्देश सूचना, ज्ञान या कौशल प्रदान करता है।

3. **ट्यूशन (Tuition)** – इसमें निर्देश के लिए पारिश्रमिक प्रदान किया जाता है।

4. **प्रशिक्षण (Training)** – यह व्यावहारिक शिक्षा (Practical Education) है। इसमें कौशल, धैर्य या सुविधा (Facility) को प्राप्त करने के लिये अभ्यास किया जाता है अर्थात इसमें कार्य करना सीखा (Learning to do) जाता है।

5.**अनुशासन (Discipline)** – इसमें प्रभावी कार्य या सत्य आचरण के लिये क्रमबद्ध प्रशिक्षण प्राप्त किया जाता है।

6.**सिद्धांत बोधन (Indoctrination)** – इसमें सिखाने या पढ़ाने पर बल दिया जाता है। इसमें किसी सिद्धांत या विचारधारा या मत का बोध कराया जाता है।

7.**पालन–पोषण (Breeding)** – इसमें जीवन के शिष्टाचारों के प्रशिक्षण पर बल दिया जाता है।

8.**संस्कृति (Culture)** – इसमें शिक्षा द्वारा प्रेरित विचार तथा अनुभव करने की शैली के विकास पर बल दिया जाता है। इस प्रकार इसमें प्रक्रिया तथा अर्जन पर बल दिया जाता है।

शिक्षा के उद्देश्य :–

1.**सार्वभौमिक उद्देश्य** – सर्व भौमिक उद्देश्यों को सामान्य उद्देश्य भी कहा जाता है। सर्व भौमिक उद्देश्य देश व काल से प्रभावित ना हो कर सदा एक से ही रहते हैं और इनका निर्धारण प्रायः उनके आंतरिक मूल्यों के आधार पर होता है। इनकी उपयोगिता सभी देशों व सभी कार्यों में होती है। इस प्रकार के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्य हैं जिनसे मानव गुणों का विकास होता है जैसे– प्रेम, अहिंसा, मानव के व्यक्तित्व का संतुलित विकास, उचित शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य समाज की प्रगति।

2.**विशिष्ट उद्देश्य** – विशिष्ट उद्देश्य किसी भी सामाजिक व आर्थिक परिस्थिति पर आधारित होते हैं। यह देश से प्रभावित होते हैं और किसी विशेष परिस्थिति में ही उपयोगी होते हैं उदाहरण के लिए एक औद्योगिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ देश विज्ञान और तकनीकी विषयों के अध्ययन पर महत्व देता है। ऐसे देश में शिक्षा का उद्देश्य आधुनिकरण की प्रक्रिया में प्रगति लाना हो सकता है।

3.**शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य** – जब तक व्यक्ति सामाजिक प्राणी है तब तक उसे अपनी व्यक्तित्व को सामाजिक विषमताओं के अधीन रखना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त समाज की आवश्यकताओं के अनुसार उसके व्यक्तित्व का निर्माण होगा।

4.**व्यक्तिक उद्देश्य** – व्यक्ति की अपने आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए सामग्री जुटाता है। यही उसकी व्यक्तित्व को सफल समर्थक और शक्तिशाली बनाने का प्रयास करता है। शिक्षा को ऐसी दशा में उत्पन्न करने चाहिए जिससे व्यक्तित्व का पूर्ण विकास हो सके और व्यक्ति मानव को अपना मौलिक योग दे सके।

1.2 **Aims of Education : character building, education as means of livelihood, for social efficiency social aim,cultural development and transmission (शिक्षा के उद्देश्यः चरित्र निर्माण, आजीविका के साधन के रूप में शिक्षा, सामाजिक दक्षता के लिए सामाजिक उद्देश्य, सांस्कृतिक विकास और प्रसारण)** – शिक्षा आजीवन चलने वाली एक

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

सतत प्रक्रिया है। शिक्षा का उद्देश्य शिक्षा की प्रक्रिया को दिशा प्रदान करना है। शिक्षा के विभिन्न उद्देश्य हैं जैसे सामाजिक उद्देश्य, व्यावसायिक उद्देश्य, सांस्कृतिक उद्देश्य, नैतिक उद्देश्य, आध्यात्मिक उद्देश्य, बौद्धिक उद्देश्य आदि।

चरित्र निर्माण (Character building) :– चरित्र एक मानसिक गुण है और इसे शिक्षा द्वारा बहुत सावधानी से बनाया जाना चाहिए।

टी. रेमंड का मत है, ''शिक्षा अपने वास्तविक अर्थ और मूल्य को तब खोजती है जब उसका उद्देश्य चरित्र निर्माण है''।

एम.के.गांधी ने देखा, ''शिक्षा में चरित्र निर्माण का उद्देश्य है, मैं महान उद्देश्यों की दिशा में काम करने में साहस, शक्ति, गुण, खुद को भूलने की क्षमता विकसित करने का प्रयास करूंगा। मुझे यह महसूस करना चाहिए कि यदि हम व्यक्ति, समाज के चरित्र के निर्माण में सफल होते हैं खुद संभाल लेंगे।

इन्हें शिक्षा के उपयुक्त कार्यक्रम द्वारा बढ़ावा दिया जाना चाहिए। इसलिए, एस राधाकृष्णन कहते हैं, ''भारत सहित पूरी दुनिया की परेशानी इस तथ्य के कारण है कि शिक्षा केवल बौद्धिक अभ्यास बन गई है न कि नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति''।

सामाजिक उद्देश्य (Social Aim) :– मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। शिक्षा उसे समाज का उत्पादक सदस्य बना सकती है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी क्षमता के साथ पैदा होता है। यह वह शिक्षा है जो व्यक्ति को उसकी क्षमता को पूरा करने में मदद करती है। समाज को छोटे या बड़े समूह में व्यक्तियों के बीच परस्पर क्रिया का परिणाम माना जाता है। शिक्षा समाज के शांतिपूर्ण अस्तित्व को सुनिश्चित करती है। शिक्षा के द्वारा छात्र सामाजिक मूल्यों जैसे न्याय, निष्पक्ष खेल, स्वस्थ प्रतिस्पर्धा और सद्भाव आदि के महत्व को समझते हैं। शिक्षा व्यक्ति को समुदाय और राष्ट्र के प्रति जवाबदेह बनाती है। सामाजिक उद्देश्यों के साथ शिक्षा समाज को उसके विकास की दिशा देती है।

यह माना जाता है कि एक अच्छा नागरिक राष्ट्र के लिए एक संपत्ति है। राष्ट्र का विकास नागरिकों की प्रकृति पर निर्भर करता है और एक अच्छा नागरिक होने के लिए कुछ गुण आवश्यक तत्व हैं – सामाजिक जिम्मेदारी और सामाजिक कर्तव्य की भावना, स्वतंत्रता के लिए प्यार, स्वतंत्र सोच की शक्ति, राष्ट्रीय सेवा की भावना समुदाय और राष्ट्र के बड़े हितों के लिए अपने व्यक्तिगत हितों का त्याग करने की भावना, स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का साहस, भय से मुक्त, और सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था यानी सामाजिक–राजनीतिक चेतना का ज्ञान।

अतः इन मूल्यों को नियोजित एवं संगठित शिक्षा प्रणाली के माध्यम से बच्चों और व्यक्तियों के मन में स्थापित किया जाना चाहिए। प्लेटो, सरकार की व्यवस्था पर ग्रंथ के लेखक, ''द रिपब्लिक'' लिखते हैं, ''नागरिकता के लिए शिक्षा ही एकमात्र ऐसी शिक्षा है जो नाम के योग्य है; कि अन्य प्रकार का प्रशिक्षण, जिसका उद्देश्य धन या शारीरिक शक्ति प्राप्त करना है, या बुद्धि और न्याय के अलावा केवल चतुराई है, मतलबी और अनुदार है और शिक्षा कहलाने के योग्य नहीं है। ''

व्यावसायिक उद्देश्य (Vocational Aim) :– शिक्षा की प्रक्रिया व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए सक्षम बनाती है, ताकि वह समाज में उपयोगी और उत्पादक जीवन जी सके। व्यक्ति श्रम की गरिमा का सम्मान करता है। यह उद्देश्य उसे आत्मनिर्भर और पर्याप्त बनाता है और शिक्षा और व्यवसाय के बीच की खाई को भरता है। व्यावसायिक उद्देश्य का उपयोगितावादी आयाम भी है। शिक्षा व्यक्ति को उपयोगी ढंग से ज्ञान और कौशल प्रदान करती है।

आधुनिक समय में, यह महसूस किया जाता है कि शिक्षा का प्रारंभिक मूल्य होना चाहिए ताकि व्यक्ति अपनी आजीविका अर्जित कर सके या खुशी और सफलतापूर्वक जीने के लिए दोनों सिरों को पूरा कर सके। यह एक व्यक्ति की आर्थिक आत्मनिर्भरता है जो उसे एक योग्य और योगदान देने वाला नागरिक बनाती है।

इस उद्देश्य के पैरोकारों का कहना है कि बच्चे ने जो भी ज्ञान प्राप्त किया है, वह सारी संस्कृति जो बच्चे ने स्कूल में हासिल की है, वह किसी काम की नहीं होगी, अगर वह समुदाय के एक वयस्क सदस्य के रूप में दोनों सिरों को पूरा नहीं कर सकता। इसलिए शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को आत्म निर्भर बनाने के लिए ज्ञान, कौशल और जानकारी प्रदान करना होना चाहिएय दूसरों पर खींच या परजीवी न बनें।

सांस्कृतिक उद्देश्य (Cultural Aim) :– शिक्षा का एक सांस्कृतिक उद्देश्य भी होता है। शिक्षा ग्रहण करने से बालक सभ्य और सुसंस्कृत बनता है। एक शिक्षित व्यक्ति सौंदर्य बोध विकसित करता है और दूसरे की संस्कृति का सम्मान करता है। संस्कृति को जानने में किसी समाज की मौजूदा मान्यताओं, कला, नैतिकता, कानूनों आदि के बारे में ज्ञान प्राप्त करना या प्राप्त करना शामिल है।

संस्कृति को जटिल संपूर्ण के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, प्रथा, परंपरा, लोक तरीके, धर्म, साहित्य और समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य द्वारा प्राप्त की गई अन्य क्षमताएं और आदतें शामिल हैं। एम.के. गांधी ने साहित्यिक पहलू से अधिक इस सांस्कृतिक पहलू पर अपना महत्व देते हुए कहा, ''संस्कृति नींव है, प्राथमिक चीज .... इसे खुद को सबसे छोटे रूप में

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

दिखाना चाहिए आपके आचरण और व्यक्तिगत व्यवहार का विवरण, आप कैसे बैठते हैं, आप कैसे चलते हैं, आप कैसे कपड़े पहनते हैं, आदि। आंतरिक संस्कृति आपके भाषण में परिलक्षित होनी चाहिए, जिस तरह से आप आगंतुकों और मेहमानों के साथ व्यवहार करते हैं।

संस्कृति में अंतर–संबंधित ज्ञान, कौशल, मूल्यों और लक्ष्यों की विशाल श्रृंखला शामिल है। एक सुसंस्कृत व्यक्ति वह है जिसका व्यक्तित्व परिष्कृत है, जिसका सौंदर्य स्वाद विकसित होता है, जो सामाजिक रूप से उपयोगी जीवन जीता है, जो सामाजिक रूप से कुशल है, जो विचारों और मूल्यों की सराहना करता है, जो समुदाय के सर्वोत्तम विचारों को समझता है और न केवल समृद्ध अनुभवों को आत्मसात करता है जाति की, लेकिन समाज के विकास के लिए इन अनुभवों का सार्थक तरीके से उपयोग भी करते हैं।

आध्यात्मिक उद्देश्य (Spiritual Aim) :– व्यक्तियों के बीच आध्यात्मिकता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा आवश्यक है। वह स्वयं को स्वार्थ से ऊपर उठाता है और दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करता है, जिसे आत्म–साक्षात्कार की स्थिति कहा जाता है। वह न केवल सही या गलत का उपदेश देता है, बल्कि अपने जीवन में उसका अभ्यास भी करता है।

आदर्शवादी दार्शनिकों का तर्क है कि शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के आध्यात्मिक पक्ष का विकास करना है। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य व्यक्ति की आध्यात्मिक क्षमताओं का अधिकतम विकास होना चाहिए। बदले में, यह विकास मानव आत्मा और मन को वास्तविक शक्ति देता है। व्यक्ति के आध्यात्मिक पक्ष के लिए शिक्षा के महत्व के संबंध में।

डॉ. एस. राधाकृष्णन कहते हैं, ''शिक्षा का उद्देश्य न तो राष्ट्रीय दक्षता है और न ही विश्व एकजुटता, बल्कि व्यक्ति को यह महसूस कराना है कि उसके भीतर बुद्धि से भी गहरी कोई चीज है, अगर आप चाहें तो इसे आत्मा कह सकते हैं''।

श्री अरबिंदो का विचार है, ''शिक्षा का मुख्य उद्देश्य बढ़ती हुई आत्मा को अपने आप में जो सबसे अच्छा है उसे बाहर निकालने में मदद करना चाहिए और इसे एक नेक काम के लिए परिपूर्ण बनाना चाहिए''। अतः शिक्षा का केन्द्रीय उद्देश्य मनुष्य में आध्यात्मिकता का विकास होना चाहिए।

शिक्षा के कार्यक्रम द्वारा व्यक्तियों के मन में आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश मानवता , स्वार्थ, भ्रष्टाचार, आक्रामकता, हिंसा, अराजकता, अव्यवस्था, संकीर्णता, द्वेष के दलदल में गिरने से बचाने के लिए समय की आवश्यकता है।

शिक्षा का सर्वांगीण विकास लक्ष्य (All – round Development Aim of Education) :– इसे शिक्षा के सामंजस्यपूर्ण विकास उद्देश्य के रूप में भी जाना जाता है। यह मानव व्यक्तित्व के शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक, आध्यात्मिक, नैतिक और सौंदर्य पक्षों के सामंजस्यपूर्ण विकास को संदर्भित करता है। मानव प्रकृति के सभी पहलुओं के इस सामंजस्यपूर्ण विकास के साथ ही वह जीवन में अपनी भूमिका अच्छी तरह से निभा सकेगा और मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में सफलता प्राप्त कर सकेगा। इस उद्देश्य की वकालत सबसे पहले रूसो ने की थी जिन्होंने शिक्षा को ''एक सुखद, तर्कसंगत, सामंजस्यपूर्ण रूप से संतुलित, उपयोगी और इसलिए प्राकृतिक जीवन में विकास की प्रक्रिया'' के रूप में कहा था। इस उद्देश्य के अन्य महत्वपूर्ण समर्थक पेस्टलोजी, रॉस और एम.के. गांधी।

पेस्टलोजी मानते हैं, ''शिक्षा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का प्राकृतिक, सामंजस्यपूर्ण और प्रगतिशील विकास है''।

सामंजस्यपूर्ण विकास से उनका तात्पर्य 3 एच – सिर, हृदय और हाथ की शिक्षा से है। रॉस के अनुसार, ''समन्वय विकास का अर्थ है बच्चे का बौद्धिक, धार्मिक, नैतिक सौंदर्य विकास''।

Note :– 3 H's – Head , Heart and Hand .

शिक्षा का पूर्ण जीवन लक्ष्य (Complete Living Aim of Education) :– उन्नीसवीं सदी के प्रख्यात प्रकृतिवादी दार्शनिक, शिक्षाविद् और जीवविज्ञानी हर्बर्ट स्पेंसर ने शिक्षा के संपूर्ण जीवन लक्ष्य की व्याख्या की। उन्होंने कहा कि शिक्षा से संपूर्ण–कुछ ऐसा विकास होना चाहिए जो व्यक्ति को जीवन की सभी समस्याओं का सभी क्षेत्रों में सामना करने में सक्षम बनाता है और उन्हें बड़े साहस और दृढ़ विश्वास के साथ हल करता है।

उन्होंने जोर देकर कहा कि शिक्षा का मुख्य कार्य व्यक्तियों को जीवन के लिए तैयार करने में सक्षम बनाना है और जीवन की कला में सभी परिस्थितियों में सभी दिशाओं में आचरण का सही शासन शामिल है। इस संबंध में उनका कहना है कि शिक्षा हमें बताएगी कि ''शरीर के साथ कैसा व्यवहार करना है, किस तरह से मामलों का प्रबंधन करना है, अपने परिवार का पालन–पोषण किस तरह से करना है, एक नागरिक के रूप में कैसा व्यवहार करना है, किस तरह से उपयोग करना है। खुशी के वे स्रोत जो प्रकृति प्रदान करती है – सभी सुविधाओं का उपयोग अपने और दूसरों के सबसे बड़े लाभ के लिए कैसे करें "।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

अतः शिक्षा को हमें नियमों और संपूर्ण जीवन जीने के तरीकों से परिचित कराना चाहिए। वह अपने ग्रंथ ''शिक्षा पर'' में लिखते हैं, ''हमें पूर्ण जीवन के लिए तैयार करना वह कार्य है जिसे शिक्षा को पूरा करना है, और किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम को निर्धारित करने का एकमात्र तरीका यह निर्धारित करना है कि यह किस हद तक इस तरह के कार्य का निर्वहन करता है''। उन्होंने कुछ गतिविधियों की पहचान की जो प्राथमिकता के क्रम में अपने संबंधित मूल्यों के अनुसार पूर्ण जीवन जीने पर असर डालते हैं।

1. आत्म–संरक्षण से संबंधित गतिविधियाँ प्रत्यक्ष रूप से वे विषय हैं जैसे शरीर क्रिया विज्ञान, स्वच्छता, भौतिकी, रसायन विज्ञान जो आत्म–संरक्षण में मदद करते हैं। परोक्ष रूप से आत्म संरक्षण से संबंधित गतिविधियों में गणित, जीव विज्ञान, समाजशास्त्र और भौतिकी जैसे विषय शामिल हैं

2. संतानों के पालन–पोषण से संबंधित गतिविधियाँ शरीर विज्ञान, घरेलू विज्ञान, मनोविज्ञान जैसे विषय हैं जो बच्चे के विकास और विकास के सिद्धांतों को समझने में मदद करते हैं।

3.कला, संगीत, कविता, चित्रकला, साहित्य, नाटक आदि जैसे विषयों में अवकाश के समय के लाभकारी उपयोग से संबंधित गतिविधियों में अवकाश के समय की जरूरतों को पूरा करके अंत की सेवा करना शामिल है।

Unit 1.3 Education in 21st century in India (भारत में 21वीं सदी में शिक्षा) – आज, लोगों ने महसूस किया है कि शिक्षा भविष्य के लिए अवसर और आशा में तब्दील हो जाती है। उन्होंने इस तथ्य को समझ लिया है कि शिक्षा प्राप्त करने की क्षमता, रचनात्मकता और जिज्ञासा को बढ़ावा देने, उत्तर तलाशने की क्षमता मानव जाति को आगे बढ़ने की अनुमति देगी। भारत में शिक्षा संस्कृति दिलचस्प समय पर पहुंच गई है। शिक्षक अधिक योग्य हैं, छात्र अधिक जागरूक हैं, स्कूलों में बेहतर सुविधाएं हैं, शुल्क संरचना छत पर चली गई है। आधुनिक शिक्षा निश्चित रूप से कंप्यूटर, प्रोजेक्टर, इंटरनेट और बहुत कुछ द्वारा सहायता प्राप्त है। जो कुछ भी सरल किया जा सकता है उसे सरल बना दिया गया है। प्रौद्योगिकी और विज्ञान ने जीवन के हर पहलू का पता लगाया है। इंटरनेट अकल्पनीय ज्ञान प्रदान करता है, और इसका कोई अंत नहीं है।

भारत में शिक्षा में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा शामिल है। प्रारंभिक शिक्षा 8 साल तक चलती है, माध्यमिक और वरिष्ठ माध्यमिक शिक्षा 4 साल तक चलती है। भारत में उच्च शिक्षा उच्च माध्यमिक शिक्षा उत्तीर्ण करने के बाद शुरू होती है, और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम आमतौर पर दो से तीन साल की अवधि के होते हैं।

आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य(Goal of modern education) :– आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य यह सुनिश्चित करने पर ध्यान केंद्रित करना है कि बच्चे समस्या हल करने वाले, निर्णय लेने वाले और सक्षम बनाने वाले होंगे। छात्रों को जीवन कौशल के साथ स्कूल छोड़ने की जरूरत है जो उन्हें चुनौतियों का सामना करने में मदद करते हैं, भले ही वे उनके समाधान नहीं जानते हों। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्हें अपने आस–पास के लोगों के साथ काम करने में सहज होना चाहिए, जिनकी अलग–अलग पृष्ठभूमि और जीवन के अनुभव सहयोगी रूप से हैं। खोज का लगभग कोई क्षेत्र नहीं बचा है जो एक आयामी या व्यक्तिवादी हो। यहां तक कि अगर आप टेनिस या एथलेटिक्स जैसे व्यक्तिगत खेल का पीछा करने वाले खिलाड़ी का सबसे चरम उदाहरण लेते हैं, तो उन्हें मनोवैज्ञानिकों, प्रशिक्षकों, बड़े डेटा प्रौद्योगिकीविदों के साथ इंटरफेस करने और एक टीम के रूप में मिलकर काम करने की आवश्यकता होती है।

कौशल आधारित शिक्षा भविष्य की जरूरत(Skill – based education is the need of the future) :– मोटे तौर पर कहा जाए तो शिक्षा केवल निर्धारित पाठ्यक्रम को पढ़ाना ही नहीं है, बल्कि जीवन के हर क्षेत्र में मन को कई संभावनाओं के लिए खोलना, जीवन कौशल को आत्मसात करना और उद्यमशीलता की तैयारी करना है। शास्त्रीय अर्थ में उद्यमिता को एक उद्यम निर्माण पर केंद्रित किया गया है, लेकिन उद्यम प्रबंधन और स्केलिंग भी परिभाषा का एक हिस्सा है, भविष्य व्यक्तिगत सीखने, अनुकूलित खपत और छोटे सीखने के स्थान हैं जहां छात्र तरल वातावरण में सीख सकते हैं और एक–दूसरे से सीख सकते हैं। शिक्षक–छात्र संबंध एक गतिशील परिवर्तन का सामना करेंगे, जब फ्लिप किए गए क्लासरूम स्कूलों में अपवाद के बजाय एक आदर्श बन जाते हैं।

आधुनिक शिक्षण पद्धति को शामिल करना (Engaging modern teaching methodology) :– आधुनिक शिक्षण पद्धति सोच और विश्लेषणात्मक कौशल पर केंद्रित है। छात्रों में हस्तांतरणीय अमूर्त सोच कौशल और चिंतनशील अवलोकन भविष्य के करियर को विकसित करने में मदद करता है। इस प्रक्रिया में प्रोजेक्ट मेकिंग, फील्ड ट्रिप और नियंत्रित वातावरण में चुनौतियों का सामना करना शामिल है। यह भविष्य की सफलता का आधार है क्योंकि यह सीखने और करने के बीच की खाई को पाटता है। सिद्धांत और व्यवहार के बीच की विसंगति को दूर किया जाता है। सीखने की अवस्था को बढ़ाया जाता है, और कार्यप्रणाली प्रदर्शनकारी मानसिकता और व्यवहार परिवर्तन पैदा करने में सहायक होती है। यह समग्र शैक्षिक प्रथाओं की नींव रखता है जो एक ऐसा वातावरण बनाता है जो जीवन भर सीखने की सुविधा देता है, छात्र की प्राकृतिक जिज्ञासा को बढ़ाता है और प्रतिधारण को बढ़ाता है। नाटकीय रूप से। मूल्यांकन प्रणाली भी मजबूत है और आधुनिक पद्धति के उपयोग के साथ व्यक्तिगत स्तर पर प्रत्येक बच्चे के लिए मुख्य ताकत और सुधार के क्षेत्रों का मूल्यांकन करने में मदद करती है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

शिक्षण कार्यक्रम में प्रौद्योगिकी का उपयोग (Use of technology in the learning program) :– प्रौद्योगिकी ने समुदायों के बीच बेहतर बातचीत को सक्षम किया है, और शिक्षाविदों को तकनीक को अधिक से अधिक कार्यप्रणाली और नए युग के शिक्षाशास्त्र के प्रवर्तक के रूप में देखना चाहिए, न कि शिक्षक के विकल्प के रूप में। सीखने को और अधिक प्राकृतिक बनाने के लिए प्रौद्योगिकी का उपयोग भविष्य की कुंजी है। जब हमारा दैनिक जीवन तकनीक द्वारा सशक्त हो जाता है, तो इसका कोई कारण नहीं है कि शिक्षण–अधिगम को इससे वंचित किया जाए। अंतर तब बना रहता है जब छात्रों को केवल पारंपरिक तरीकों का उपयोग करके पढ़ाया जाता है, और कार्यस्थल प्रौद्योगिकी के उपयोग से भरा होता है। छात्र अक्सर अनुकूलन करने में विफल रहता है और लड़खड़ाता है, जिससे रोजगार के जंगल में अनुपयुक्त होने का एक भूत बन जाता है। कक्षाओं में प्रौद्योगिकी के उपयोग से छात्रों के सीखने की अवस्था में कई सकारात्मक परिवर्तन हुए हैं। आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस, ऑगमेंटेड रियलिटी, ऑटोमेशन, रोबोटिक्स, वर्चुअल रियलिटी, डिजिटल मार्केटिंग आदि के समामेलन ने शिक्षा क्षेत्र में क्रांति ला दी है। स्कूल इन विषयों के लिए निर्मित प्रयोगशालाओं को शामिल कर रहे हैं। प्रौद्योगिकी के उपयोग ने अंतःविषय सीखने और अनुसंधान आधारित नवाचार पर प्रभाव को बढ़ावा दिया है।

Unit :- 1.4. Formal, Informal and Non-Formal Education **(औपचारिक, अनौपचारिक और गैर अनौपचारिक शिक्षा)** – शिक्षा कक्षा की चार दीवारों के भीतर जो कुछ भी होता है, उससे कहीं आगे जाती है। एक बच्चा इन कारकों के आधार पर स्कूल के बाहर और साथ ही भीतर से अपने अनुभवों से शिक्षा प्राप्त करता है। शिक्षा के तीन मुख्य प्रकार हैं, औपचारिक, अनौपचारिक और गैर–औपचारिक,

औपचारिक शिक्षा (Formal Education) – औपचारिक शिक्षा वह शिक्षा है जो एक निश्चित स्थान पर, निश्चित लोगों के द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम तथा निश्चित समय में संपन्न की जाती है उसे औपचारिक शिक्षा कहते हैं। औपचारिक शिक्षा का मुख्य स्थान विद्यालय परिसर है। पुस्तकालय, चित्र भवन, यह सभी की औपचारिक शिक्षा के साधन है।

औपचारिक शिक्षा के विशेषताएं

- औपचारिक शिक्षा कक्षा–शिक्षण प्रणाली है।
- औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक और विद्यार्थी कक्षा कक्ष में आमने सामने होते हैं।
- औपचारिक शिक्षा से प्राप्त शिक्षा का एक उद्देश्य निश्चित होता है।
- औपचारिक शिक्षा का एक समय निश्चित होता है।
- इस प्रकार के शिक्षा का पाठ्यक्रम भी निश्चित होता है।
- औपचारिक शिक्षा एक निश्चित जगह पर दी जाती हैं जैसे– विद्यालय।
- औपचारिक शिक्षा एक निश्चित लोगों के द्वारा दी जाती है जैसे– शिक्षक गण।

अनौपचारिक शिक्षा क्या है?

अनौपचारिक शिक्षा एक मुक्त शिक्षा प्रणाली है। इस प्रकार के शिक्षा प्रणाली में शिक्षक, परीक्षा, पाठ्यक्रम, समय तालिका एवं कोई निश्चित स्थान इत्यादि का महत्व नहीं होता है। बच्चे कहीं भी स्वतंत्र रूप से शिक्षा को ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार के शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा कहलाता है।

अनौपचारिक शिक्षा के उदाहरण एवं साधन

अनौपचारिक शिक्षा के साधन के अंतर्गत :– चिड़ियाघर, आस–पड़ोस, समाज तथा वातावरण, मित्र–मंडली, खेल, सामूहिक कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं।

अनौपचारिक शिक्षा का विशेषता एवं महत्व –

- अनौपचारिक शिक्षा एक मुक्त शिक्षा प्रणाली होती है।
- इस प्रकार के शिक्षा प्रणाली में किसी सिखाने वाले लोगों की जरूरत नहीं होती है बालक स्वयं अपने अनुभव से सीखता है।
- अनौपचारिक शिक्षा में सीखने का कोई समय निश्चित नहीं होता है।
- अनौपचारिक शिक्षा में शिक्षण के लिए कोई स्थान निर्धारित नहीं होता है।
- इस प्रकार के शिक्षा में बालक किसी भी चीज से सीख सकता है अर्थात, सिखाने वाला कोई भी हो सकता है।
- अनौपचारिक शिक्षा देने से पहले शिक्षा प्राप्ति का कोई उद्देश्य नहीं होता है।

निरौपचारिक शिक्षा क्या है?

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

निरौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा के बीच की शिक्षा प्रणाली होती है। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा दोनों से मिला–जुला होता है। निरौपचारिक शिक्षा में ना तो औपचारिक शिक्षा के समान विभिन्न प्रकार के बंधन होते हैं और ना ही अनौपचारिक शिक्षा की तरह पूरा खुलापन होता है।

निरौपचारिक शिक्षा में पाठ्यक्रम, शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षण विधि, शिक्षण समय इत्यादि निश्चित होते हैं जो औपचारिक शिक्षा के गुण भी हैं। लेकिन निरौपचारिक शिक्षा में स्थान निर्धारित नहीं होता है। शिक्षा देने वाले व्यक्ति निर्धारित नहीं रहते हैं, जो अनौपचारिक शिक्षा के गुण को दर्शाता है।

निरौपचारिक शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है :– दूरस्थ शिक्षा प्रणाली। दूरस्थ शिक्षा में समय पाठ्यक्रम शिक्षण विधि इत्यादि निर्धारित रहते हैं लेकिन बालक कहीं भी रह कर किसी भी साधन के उपयोग करके पढ़ाई को पूरा कर सकता है यह जरूरी नहीं है कि वहां उसी कॉलेज या स्कूल के शिक्षकों से पढ़ाई करेगा। वह अपने घर पर रहकर या फिर किसी अन्य जगह पर भी रहकर पढ़ाई कर सकता है। और साथ ही वह किसी भी चीज से पढ़ाई को पूरा कर सकता है जैसे पूर्व विद्यार्थी के नोट्स या फिर ऑनलाइन पढ़ाई भी कर सकता है।निरौपचारिक शिक्षा में औपचारिक शिक्षा का भी गुण मिला साथ ही साथ अनौपचारिक शिक्षा का भी गुण देखने को मिलता है इसीलिए निरौपचारिक शिक्षा को इन दोनों शिक्षा के बीच की शिक्षा प्रणाली कहा गया है।

<u>निरौपचारिक शिक्षा के गुण एवं विशेषताएं</u>

- निरौपचारिक शिक्षा का पाठ्यक्रम समय सारणी उद्देश्य इत्यादि निर्धारित होते हैं।
- निरौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने का स्थान किसी भी जगह हो सकता है।
- इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली में बालक किसी भी चीजों की सहायता से अपने शिक्षा को पूरा कर सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि निरौपचारिक शिक्षा प्रणाली औपचारिक शिक्षा प्रणाली एवं अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली के बीच की शिक्षा प्रणाली हैं।

Unit : 1.5 Functions of Education—Nation Building, National Integration, Social Integration Bringing about peace and harmony in the society and inculcating values and ethos (शिक्षा के कार्य– राष्ट्र निर्माण, राष्ट्रीय एकता, सामाजिक एकता समाज में शांति और सद्भाव लाना और मूल्यों और लोकाचार को विकसित करना) –

राष्ट्र निर्माण (Nation building) :– भारत को अग्रणी देश और अर्थव्यवस्था बनाने के लिए सरकार ने शुरुआत की है। इन मिशनों को साकार करने के कार्य के लिए खुद को तैयार करने के लिए डिजिटल इंडिया और मेक इन इंडिया जैसी योजनाएं, जिनमें शिक्षा प्रणाली विशेष रूप से उच्च शिक्षा की आवश्यकता होती है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति और सफलता काफी हद तक प्रतिभाशाली और प्रशिक्षित मानव संसाधन की उपलब्धता और प्रतिबद्धता पर निर्भर करेगी। यहीं पर शिक्षा की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण होती है।

सरकार ने उच्च शिक्षा संस्थानों में अनुसंधान और नवाचार की आवश्यकता और महत्व को रेखांकित करने के लिए कई पहल शुरू की हैं। 2016 में, इसने 10 निजी और 10 सार्वजनिक विश्वविद्यालयों को अगले 10 से 15 वर्षों में विकसित, विकसित और फलने–फूलने के लिए आवश्यक स्वायत्तता और स्वतंत्रता प्रदान करके विश्व स्तरीय बनाने के लिए इंस्टीट्यूशन ऑफ एमिनेंस योजना की घोषणा की। यह योजना, अन्य बातों के अलावा। इन संस्थानों को पूर्ण शैक्षणिक, वित्तीय, प्रशासनिक और नियामक स्वायत्तता प्रदान करने का लक्ष्य है ताकि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उनकी प्रतिस्पर्धात्मकता को बढ़ाया जा सके। सभी केंद्रीय वित्त पोषित संस्थानों और निजी क्षेत्र के लोगों के पास इस राष्ट्र निर्माण कार्य में भाग लेने का अवसर है।

राष्ट्रीय एकता पर शिक्षा की भूमिका (ROLE OF EDUCATION ON NATIONAL INTEGRATION) :– नवंबर 1960 में राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के मद्देनजर सभी राज्यों के शिक्षा मंत्रियों ने इस मामले पर विचार करने के लिए बैठक की। राष्ट्रीय एकता की समस्या को गंभीरता से लिया गया। तब यह निर्णय लिया गया कि देश में राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता को बढ़ावा देने के लिए डॉ संपूर्णानंद के नेतृत्व में एक समिति गठित की जाए, समिति ने समस्या के अन्य पहलुओं पर विचार करने के अलावा राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में शिक्षा की भूमिका पर भी विचार किया। समिति का गठन मई 1961 में किया गया था और इसने इसकी शुरुआत कीय इसके तुरंत बाद काम करें। शिक्षा और राष्ट्रीय और भावनात्मक एकता समिति की सिफारिशें। समिति ने सिफारिश की कि शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान देना या आदान–प्रदान करना होना चाहिए, बल्कि छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना भी होना चाहिए।

समिति की महत्वपूर्ण सिफारिशें इस प्रकार (The important recommendations of Committee as follows) :–

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

- शिक्षा संस्थानों की मान्यताः मान्यता केवल उन्हीं शैक्षणिक संस्थानों को दी जानी चाहिए जो जाति, पंथ, धर्म, वंश आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करते हैं।
- प्रवेश का आधार शैक्षणिक संस्थानों में प्रवेश का आधार छात्र की योग्यता होनी चाहिए न कि जाति, कुल, धर्म, वर्ग आदि।
- स्कूल की वर्दीः हर स्कूल में छात्रों की वर्दी समान होनी चाहिए।
- राष्ट्रगानः छात्रों को हमारे राष्ट्रगान का अर्थ सिखाया जाना चाहिए और कोरस में ठीक से गाना चाहिए।
- राष्ट्रीय ध्वज का सम्मानः छात्रों को राष्ट्रीय ध्वज का महत्व सिखाया जाना चाहिए और राष्ट्रीय ध्वज के प्रति उचित सम्मान दिखाना चाहिए।
- राष्ट्रीय एकता के व्याख्यानों का आयोजन : विद्यालय की विभिन्न गतिविधियों और उद्देश्यों के लिए आयोजित सभा का उपयोग राष्ट्रीय एकता पर जोर देने के लिए किया जाना चाहिए।
- **स्कूल परियोजना** : छात्रों को उनके देश से परिचित कराने के विशिष्ट उद्देश्य के लिए स्कूलों में परियोजना शुरू की जानी चाहिए। इन परियोजनाओं से देश के विभिन्न हिस्सों के बारे में ज्ञान बढ़ाना चाहिए और इस प्रकार देश के प्रति प्रेम को बढ़ावा देना चाहिए
- **ओपन एयर थिएटर** : साल में कम से कम चार बार छात्रों के लाभ के लिए स्कूलों में नाटक का मंचन किया जाना चाहिए। इन नाटकों का विषय प्राचीन भारत, समकालीन भारत और स्वतंत्रता आंदोलन के समय की एकता और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देना होना चाहिए।
- पाठ्यचर्या का पुनर्गठन आधुनिक भारत के लोकतांत्रिक और धर्मनिरपेक्ष मूल्यों के आधार पर स्कूलों के पाठ्यक्रम का आयोजन किया जाना चाहिए।
- **प्राथमिक स्तर** : प्रार्थना सभा, महापुरुषों की कथा सुनाने वाले राष्ट्रगीत गायन, लोकगीत, देशभक्ति गीत और सामाजिक अध्ययन को महत्व दिया जाना चाहिए।
- **माध्यमिक स्तरः** नैतिक और नैतिक शिक्षा, सह–पाठयक्रम गतिविधियों, भाषाओं के ज्ञान और साहित्य और सामाजिक अध्ययन को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- **विश्वविद्यालय स्तर** : विभिन्न सामाजिक विज्ञान, भाषाओं, साहित्य संस्कृति और कला पर विशेष जोर दिया जाना चाहिए।

सामजिक एकता (Social integration) :– शिक्षा समाज में व्यक्तियों को एक करती है और उनमें एकता की भावना पैदा करती है। यह व्यक्तियों और समूहों को एक दूसरे के साथ सहयोग करने और सामाजिक जीवन के लिए एक सामान्य आधार खोजने में मदद करता है। राष्ट्र का निर्माण शिक्षा के कारण होता है क्योंकि यह लोगों को एक संगठित इकाई में जोड़ता है। एक समाज के काम करने के लिए, कार्यात्मकवादियों का कहना है, लोगों को विश्वासों और मूल्यों के एक सामान्य समूह की सदस्यता लेनी चाहिए। जैसा कि हमने देखा, इस तरह के सामान्य विचारों का विकास उन्नीसवीं शताब्दी में विकसित मुफ्त, अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था का लक्ष्य था।

सांस्कृतिक उपचालन (Cultural Transmission) :– समाजीकरण के अलावा, स्कूल का एक और महत्वपूर्ण प्रकट कार्य नई पीढ़ियों के लिए सांस्कृतिक मानदंडों और मूल्यों का संचरण है, स्कूल एक विविध आबादी को एक साझा राष्ट्रीय पहचान के साथ एक समाज में ढालने और भावी पीढ़ियों को उनकी नागरिकता भूमिकाओं के लिए तैयार करने में मदद करते हैं। छात्रों को कानूनों और हमारे जीवन के राजनीतिक तरीके के बारे में पढ़ाया जाता है। नागरिक पाठों के माध्यम से, और उन्हें झंडे को सलामी देने जैसे अनुष्ठानों के माध्यम से देशभक्ति सिखाई जाती है। छात्रों को भी निष्ठा की शपथ और राष्ट्र के नायकों और कारनामों की कहानियों को सीखना चाहिए। चूंकि अमेरिका एक पूंजीवादी राष्ट्र है, इसलिए छात्र कक्षा में खेल सीखने के साथ–साथ कक्षा के बाहर गतिविधियों और एथलेटिक्स के माध्यम से टीम वर्क और प्रतिस्पर्धा दोनों के महत्व को जल्दी से सीखते हैं।

शिक्षा का मुख्य सरोकार मनुष्य में अच्छे, सच्चे और परमात्मा को विकसित करना है ताकि दुनिया में एक नैतिक जीवन स्थापित हो सके। यह अनिवार्य रूप से मनुष्य को पवित्र, सिद्ध और सच्चा बनाना चाहिए। मानवता का कल्याण न तो वैज्ञानिक या तकनीकी प्रगति में है और न ही भौतिक सुख–सुविधाओं के अधिग्रहण में है। शिक्षा का मुख्य कार्य चरित्र को समृद्ध करना है। चूंकि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन और मानव प्रगति का एक शक्तिशाली साधन है, इसलिए यह व्यक्ति में मूल्यों को विकसित करने का एक शक्तिशाली उपकरण भी है।

मूल्यों को विकसित करने के लिए कई शिक्षाविदों ने विभिन्न विचारों का सुझाव दिया है जैसे :–

- मूल्य आधारित पाठ्यक्रम का प्रावधान
- शिक्षकों के लिए विशेष अभिविन्यास कार्यक्रम तैयार करना
- मूल्य आधारित फाउंडेशन पाठ्यक्रम
- मूल्यों पर आधारित साहित्य का प्रकाशन
- शिक्षकों और छात्रों के लिए आचार संहिता विकसित करने की आवश्यकता

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

- शिक्षकों और छात्रों के बीच जीवन के प्रति दार्शनिक दृष्टिकोण का समावेश

इसके अलावा नई पीढ़ियों के बीच मूल्यों को विकसित करने के लिए हमें अपनी संचित सांस्कृतिक विरासत से एक पाठ्यक्रम तैयार करना है।

मूल्य शिक्षा का महत्व (Importance of Value Education) :– मूल्य शिक्षा जिज्ञासा, उचित रुचियों के विकास, दृष्टिकोण, मूल्यों और अपने बारे में सोचने और न्याय करने की क्षमता को जागृत करती है। यह सामाजिक और प्राकृतिक एकता को बढ़ावा देने में मदद करता है।

मूल्य शिक्षा के उद्देश्य (Objectives of Value Education) – मूल्य शिक्षा का लक्ष्य निम्न प्रकार के मूल्यों का विकास होना चाहिए।

- मन का वैज्ञानिक स्वभाव।
- बड़ा दिलवाला।
- सहयोग ।
- सहिष्णुता
- अन्य समूहों की संस्कृति का सम्मान।

मूल्य शिक्षा और भारत (Value Education and India) :– मूल्य शिक्षा भारतीय दर्शन और संस्कृति में निहित है और भारतीय संस्कृति की हर परंपरा में निहित है। वेद और उपनिषद मूल्य शिक्षा के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं। वैदिक काल में आश्रम की शिक्षा व्यवस्था में गुरु ने अपने शिष्य को जीवन भर कुछ मूल्यों का पालन करने के लिए प्रेरित किया। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948–49 ने नैतिकता के विभिन्न पहलुओं को निष्ठा, साहस, अनुशासन, आत्म–बलिदान और आध्यात्मिकता के रूप में वर्णित किया।

- क्षमता ।
- अच्छा स्वभाव सहयोग।
- वफादारी
- अनुशासन।

मूल्य शिक्षा को और अधिक प्रभावी बनाने के उपाय (Ways to make value education more effective) :– मूल्य शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाने के कई तरीके हैं। सबसे पहले, मानव जाति के कल्याण के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी में प्रगति को उन्मुख करने के लिए नैतिक जागरूकता का समर्थन किया जाना चाहिए। दूसरे, पारंपरिक मूल्यों के सामान्य पतन के साथ मानव को एकजुट करने के लिए सामान्य मूल्यों को फिर से खोजा जाना चाहिए। तीसरा, शिक्षक कक्षा के अंदर और बाहर अपने आचरण के माध्यम से छात्रों को होशपूर्वक और अनजाने में मूल्यों को पारित करते हैं। इसलिए एक औपचारिक शिक्षा स्थापित करने के लिए एक सचेत रूप से नियोजित मूल्य शिक्षा कार्यक्रम की आवश्यकता स्पष्ट है, चौथा, छात्रों को मूल्यों से जुड़े मुद्दों के बारे में अधिक जटिल निर्णय लेने की स्थिति का सामना करना पड़ सकता है। मूल्य शिक्षा के माध्यम से ऐसी स्थितियों में उचित चुनाव करने की क्षमता विकसित करने में उनकी मदद की जानी चाहिए। पांचवां, किशोर अपराध में वृद्धि उन युवाओं के लिए एक संकट है जो व्यक्तिगत विकास की प्रक्रिया से गुजरते हैं। ऐसी स्थिति में मूल्य शिक्षा का विशेष महत्व हो जाता है।

शैक्षिक संस्थानों में मूल्यों का समावेश (Inculcation of values in Educational Institutions) :– स्कूल में बच्चे एक छोटे से समाज के सदस्य होते हैं जो उनके नैतिक विकास पर जबरदस्त प्रभाव डालता है। शिक्षक स्कूल में छात्रों के लिए रोल मॉडल के रूप में कार्य करते हैं। वे अपने नैतिक व्यवहार को विकसित करने में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं। साथ ही, स्कूल में सहपाठी भी धोखा देने, झूठ बोलने, चोरी करने और दूसरों के लिए विचार करने के बारे में साहस फैला सकते हैं। हालांकि नियम और कानून हैं, शैक्षणिक संस्थान अनौपचारिक तरीके से बच्चों को मूल्य शिक्षा प्रदान करते हैं। वे बच्चों में सामाजिक–समर्थक व्यवहार विकसित करने में प्रमुख भूमिका निभाते हैं।

कमजोर नैतिक विकास वाले बच्चों के लिए साथियों के साथ संबंध विकसित करने की बच्चों की क्षमता उनकी भलाई के लिए महत्वपूर्ण है। इन बच्चों को सामाजिक या अशाब्दिक संकेतों को समझने में कठिनाई होती है और उनमें तर्क करने की क्षमता का अभाव होता है। शिक्षक इन अस्वीकृत बच्चों को साथियों की बात सुनने में मदद करने और साथियों पर हावी होने की कोशिश करने के बजाय ''सुनें कि वे क्या कहते हैं'' में एक भूमिका निभाते हैं। उपेक्षित बच्चों को साथियों का ध्यान आकर्षित करने और आकर्षित करने में मदद मिलती है। उन्हें प्रश्न पूछना, सुनना और रुचि समूहों या क्लबों को स्थापित करने में उनकी सहायता करना सिखाया जाता है जहां वे सकारात्मक में एकीकृत होते हैं।

स्कूलों के माध्यम से मूल्य शिक्षा (Value Education through Schools) :–स्कूल समाजीकरण की प्रक्रिया में बुनियादी चरण है और मूल्य शिक्षा स्कूल स्तर पर होती है क्योंकि बच्चे को दोस्तों, शिक्षकों, पाठ्यक्रम और विभिन्न पाठ्येतर गतिविधियों से अवगत कराया जाता है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

इसके अलावा, मूल्यों को इतिहास, विज्ञान या गणित जैसे अमूर्त विषयों की तरह नहीं पढ़ाया जा सकता है। हालांकि, विषयों को पढ़ाते समय जानबूझकर नियोजित स्थितियों के माध्यम से ही उन्हें विकसित किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, राष्ट्रीय आंदोलन को इस तरह से पढ़ाया जा सकता है कि यह देशभक्ति, धर्मनिरपेक्षता, सार्वभौमिक प्रेम और सहिष्णुता आदि के मूल्यों को विकसित करता है। इसी तरह, विश्व इतिहास स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों को विकसित करने में मदद कर सकता है। (फ्रांसीसी क्रांति}, मौलिक अधिकार और समानता (अमेरिकी क्रांति) विज्ञान वैज्ञानिक स्वभाव के मूल्यों को विकसित करने में मदद कर सकता है, प्रकृति के नियमों के प्रति सराहना कर सकता है। भारतीय नागरिक संविधान के सम्मान, लोकतंत्र के लिए सम्मान, धर्मनिरपेक्षता, अखंडता और सम्मान के मूल्यों को विकसित करने में मदद कर सकते हैं। देश की एकता, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक न्याय आदि। इसके अलावा, गणित ईमानदारी और अखंडता के मूल्यों को विकसित करने में मदद कर सकता हैय भूगोल और पर्यावरण दूसरे की संस्कृति के लिए सम्मान के मूल्यों को विकसित करने में मदद कर सकते हैं, और दुनिया एक परिवार है (वसुधैव कुटुम्बकम) .अंतिम लेकिन कम से कम नहीं, संविधान के बारे में शिक्षा, विशेष रूप से प्रस्तावनाय मौलिक अधिकार और कर्तव्य बताते हैं कि शिक्षा के माध्यम से किन मूल्यों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए।

Unit 2: Philosophical Foundations of Education (शिक्षा की दार्शनिक नींव)

Unit 2.1. Meaning and definition of philosophy, Relationship of philosophy with educational practices (दर्शन का अर्थ और परिभाषा, शिक्षा के साथ दर्शन का संबंध अभ्यास) –

दर्शन शब्द संस्कृत की दृश् धातु से बना है– ''दृश्यते यथार्थ तत्वमनेन'' अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ तत्व की अनुभूति हो वही दर्शन है। अंग्रेजी के शब्द फिलॉसफी का शाब्दिक अर्थ ''ज्ञान के प्रति अनुराग'' होता है। व्यापक अर्थ में दर्शन वस्तुओं, प्रकृति तथा मनुष्य उसके उद्गम और लक्ष्य के प्रतिवीक्षण का एक तरीका है, जीवन के विषय में एक शक्तिशाली विश्वास है जो उसको धारण करने वाले अन्य से अलग करता है।

दर्शन का अर्थ

दर्शन, भारतीय शब्द है, जिसका पाश्चात्य पर्यायवाची शब्द ''फिलासफी'' कहा जाता है। शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से दर्शन शब्द संस्कृत भाषा की 'दृश' धातु (जिसका सामान्य अर्थ है–देखना) के कारण अर्थ में ल्युट प्रत्यय (अन) लगाकर बना है। इसका अर्थ है जिसके द्वारा देखा जाये (दृश्यते अनेन इति दर्शनम्) देखने से अर्थ आंख द्वारा देखने से लेते है, किन्तु यह देखना स्थूल नेत्रों से भी हो सकता है और सूक्ष्म नेत्रों से भी। सूक्ष्म नेत्र इसे दिव्यचक्षु भी कहा गया है। सूक्ष्म नेत्रों से आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस प्रकार दर्शन शब्द का प्रयोग स्थूल और सूक्ष्म, भौतिक और अध्यात्मिक दोनों अर्थो में किया गया है।

दर्शन की परिभाषा

उपनिषद् काल में दर्शन की परिभाषा थी – जिसे देखा जाये अर्थात् सत्य के दर्शन किये जाये वही दर्शन है। (दृश्यते अनेन इति दर्शनम्– उपनिषद)

डा0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार – दर्शन वास्तविकता के स्वरूप का तार्किक विवेचन है।

पाश्चात्य जगत में दर्शन का सर्वप्रथम विकास यूनान में हुआ। प्रारम्भ में दर्शन का क्षेत्र व्यापक था परन्तु जैसे–जैसे ज्ञान के क्षेत्र में विकास हुआ दर्शन अनुशासन के रूप में सीमित हो गया।

अरस्तु के अनुसार – ''दर्शन एक ऐसा विज्ञान है जो परम तत्व के यथार्थ स्वरूप की जॉच करता है।''

कामटे के शब्दों मे – ''दर्शन विज्ञानों का विज्ञान है।''

हरबार्ट स्पेन्सर के शब्दो में ''दर्शन विज्ञानों का समन्वय या विश्व व्यापक विज्ञान है।''

दर्शन की आवश्यकता – दर्शन यानी दार्शनिक चिन्तन की बुनियाद, उन बुनियादी प्रश्नों में खोजी जा सकती है, जिसमें जगत की उत्पत्ति के साथ–साथ जीने की उत्कंठा की सार्थकता के तत्वों को ढूंढने का प्रश्न छिपा है। प्रकृति के रहस्यों को ढूंढने से शुरू होकर यह चिन्तन उसके मनुष्य धारा के सामाजिक होने की इच्छा या लक्ष्य की सार्थकता को अपना केन्द्र बिन्दु बनाती है। मनुष्य विभिन्न प्रकार के ज्ञान अपने जीवन में प्राप्त करता है। उस ज्ञान का कुछ न कुछ लक्ष्य अवश्य होता है। दर्शनशास्त्र के अध्ययन शिक्षाशास्त्र के विद्यार्थियों के लिये विशेष कर आवश्यक जान पड़ता है। इसके कई कारण है–

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

1. जीवन को उपयोगी बनाने के दृष्टिकोण से – भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों विचारों के अनुसार दर्शन की आवश्यकता सर्वप्रथम जीवन के लिये होती है। प्रत्येक व्यक्ति विद्वान या साधारण ज्ञान या न जानने वाला हो वह अवश्य ही विचार करता है। व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं को यादकर उनसे आगामी घटनाओं का लाभ उठाता है। यह अनुभव उसको जीवन में एक विशिष्ट दृष्टिकोण रखने वाला बना देते हैं। यही उसका जीवन दर्शन बन जाता है।

2. अर्थव्यवस्था के दृष्टिकोण – दर्शन का एक रूप हमें अर्थव्यवस्था में भी मिलता है, जिसके आर्थिक दर्शन भी कहते हैं। आर्थिक क्रियाओं पर एक प्रकार का नियंत्रण होता है। इसका प्रयोग व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय जीवन में होता है। परिणामस्वरूप दोनों को लाभ होता है। मितव्ययिता एक विचार है और इसका उदाहरण है। व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय योजना का आधार यही दर्शन होता है। अर्थव्यवस्था शिक्षा के क्षेत्र में भी होता है। जिससे लाभों की दृष्टि में रखकर योजनायें बनती हैं।

3. राजनैतिक व्यवस्था के दृष्टिकोण से – विभिन्न राजनैतिक व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के दर्शन होते हैं। जनतंत्र में जनतांत्रिक दर्शन होता है। जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार मिलते हैं। विभिन्न ढंग से उसे समान अवसर दिये जाते हैं और उसे पूर्ण स्वतंत्रता मिलती है। विभिन्न ढंग से एक दार्शनिक दृष्टिकोण एवं सिद्धान्त बनता है। दर्शन राष्ट्रीय मूल्यों का स्थापन कर उनका क्रमिक विकास करता है।

4. शैक्षिक विकास की दृष्टिकोण से – संस्कृति जीने की कला है एव तरीकों का योग हैं । दर्शन इन विधियों का परिणाम कहा जा सकता है। संस्कृति का परिचय दर्शन से मिलता है। भारतीय संस्कृति का ज्ञान उसके दर्शन से होता है। भारतीय परम्परा में सुखवाद को स्थान नहीं, त्याग एवं तपस्या का स्थान सर्वोपरि है अतएव भारतीय दर्शन में योगवादी आदर्श पाये जाते हैं और भारतीय दर्शन आदर्शवादी है।

5. व्यक्ति को चिन्तन एवं तर्क से पूर्ण बनाने की दृष्टि से – दर्शन जीवन पर, जीवन की समस्याओं पर और इनके समाधान पर चिन्तन एवं तर्क की कला है। इससे जानने की आवश्यकता हर व्यक्ति को हो।

Unit :– 2.2 Different Educational philosophies-Idealism-Naturalism-Pragmatism and Humanism-an overview (विभिन्न शैक्षिक दर्शन–आदर्शवाद, प्रकृतिवाद व्यावहारिकता और मानवतावाद– एक अवलोकन)

आदर्शवाद का अर्थ– आदर्शवाद अंग्रेजी भाषा के idealism शब्द का हिंदी रूपांतरण है। idealism शब्द की उत्पत्ति प्लेटो के इस आध्यात्मिक सिद्धांत से हुई है , – ''अंतिम वास्तविकता विचारों या विचार बाद में है।'' (Ultimate reality consists of Idea as or idealism) हिंदी में ऐसे आदर्शवाद के अतिरिक्त बहुत से शिक्षाशास्त्री प्रत्ययवाद, बुद्धिवाद, चिदात्मवाद व विचारवाद के नाम से संबोधित करते हैं। आदर्शवाद का विचार मत है कि यह जो भौतिक संसार दृष्टिगोचर होता है वह वास्तविक नहीं है बल्कि वह तो मानसिक जगत या विचार जगत की अभिव्यक्ति का साकार रूप है। आदर्श वादियों का विचार है कि जिस प्रकार भौतिकवाद संसार का आधार, पदार्थ को मानता है उसी प्रकार आदर्शवाद संसार का आधार, मन को मानता है। यह स्पष्ट है कि भौतिकवाद पदार्थ को, मन से पहले की वस्तु मानता है और आदर्शवाद मन को, पदार्थ से पहले की वस्तु मानता है। अतः स्पष्ट है कि आदर्शवाद का तात्पर्य उस दर्शन या विचारधारा से है जो मन व उसकी क्रियाओं जैसे विचार, चेतना, तर्क, प्रत्यय, अनुभव, आदर्श आदि को वास्तविक सत्ता मानती है और तदनुकूल अंतिम शक्ति आध्यात्मिक होती है।

<u>आदर्शवाद की परिभाषाएं</u>

डी एन दत्ता ''आदर्शवाद वह सिद्धांत है जो अंतिम सत्ता आध्यात्मिक मानता है।''

रॉस के अनुसार , ''आदर्शवादी दर्शन के कई भिन्न रूप हैं किंतु सभी के पीछे यही प्रमुख विचार है कि मन्या आत्मा जगत की सार वस्तु है और सच्ची वास्तविकता मानसिक होती है।''

जे. एस. रॉस के अनुसार, ''आदर्शवादी दर्शन के बहुत से और विविध रूप हैं परंतु सब का आधारभूत तत्व यही है कि संसार का उत्पादन कारण मन या आत्मा है, की वास्तविक स्वरूप मानसिक रूप का है।''

ब्रूवेकर के अनुसार, ''आदर्श वादियों का कहना है कि संसार को समझने के लिए मन सर्वोपरि है। उनके लिए इससे अधिक वास्तविक बात कोई नहीं है कि मन संसार को समझने में लगा रहे और किसी बात को इससे अधिक वास्तविकता नहीं दी जा सकती है क्योंकि किसी और बात को मन से अधिक वास्तविकता समझना स्वयं मन की कल्पना होगी।''

हैडरसन के अनुसार, ''आदर्शवाद मानव के आध्यात्मिक पहलू पर बल देता है। क्योंकि आदर्श वादियों के लिए आध्यात्मिक मूल्य जीवन के महत्वपूर्ण पहलू हैं। अधोभौतिक आदर्श वादियों का विश्वास है कि असीमित मस्तिष्क से सीमित मस्तिष्क प्राप्त होता है तथा व्यक्ति एवं संसार दोनों ही बुद्धि की अभिव्यक्ति हैं क्योंकि भौतिक विश्व की व्याख्या मस्तिष्क से ही की जा सकती है।''

आदर्शवाद के मूलभूत सिद्धांत – मनुष्य का जड़ प्रकृति की मनुष्य का जड़ प्रकृति की अपेक्षा अधिक महत्व है –

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

आदर्शवाद के सिद्धांतों के अनुसार जड़ प्रकृति की तुलना में चेतन मनुष्य का महत्व अधिक है। इस महत्व का एक मुख्य कारण मनुष्य की बौद्धिक शक्ति है। मनुष्य को समस्त जड़ जगत का ज्ञान प्राप्त है। वह अपने ज्ञान से जड़ जगत पर नियंत्रण स्थापित करता है तथा अपनी संस्कृ ति का विकास करता है।

2. आध्यात्मिक जगत का विशेष महत्व – आदर्शवाद की मान्यताओं के अनुसार आध्यात्मिक जगत सत्य है भौतिक जगत मिथ्या मात्र ही है।

3. आध्यात्मिक मूल्यों का विशेष महत्व – आदर्शवादी मान्यताओं के अनुसार आध्यात्मिक मूल्यों का महत्व है। आध्यात्मिक मूल्य है सत्यम, शिवम, सुंदरम। इन मूल्यों के महत्व को रास ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है सत्यम, शिवम, सुंदरम, यह निरपेक्ष गुण हैं, जिनमें से प्रत्येक अपनी आवश्यकता के कारण उपस्थित है और वह अपने आप में पूर्णतया वांछनीय है।

4. विचार का वस्तु की अपेक्षा अधिक महत्व – आदर्शवाद के अनुसार विचार अमर एवं शाश्वत होते हैं। वह नष्ट नहीं होते परंतु भौतिक वस्तुएं नष्ट हो जाती हैं। विचार सोच में होते हैं तथा मस्तिष्क में रहते हैं। विचार आदि काल से ही है तथा यदि एक बार वस्तु नष्ट भी हो जाए तो इस विचार के आधार पर उसका पुनः निर्माण किया जा सकता है। इसीलिए विचार का वस्तु की अपेक्षा अधिक महत्व है।

5. अनेकत्व में एकत्व का सिद्धांत – आदर्शवाद के अनुसार अनेकत्व में एकत्व को स्वीकार किया गया है। इसी एकत्व की परम शक्ति से विश्व का संचालन होता है। यही शक्ति नियंत्रणकारी शक्ति है।

6. आत्मा और परमात्मा का अनादि अनंत अस्तित्व – आदर्शवाद का एक सिद्धांत यह है कि आत्मा और परमात्मा का अस्तित्व है या यह अनादि एवं अनंत है।

7. सत्य, विचार, आचरण तथा उच्च चरित्र का महत्व – आदर्शवाद में आचरण पर भी विशेष महत्व दिया जाता है। परम लक्ष्य अर्थात आत्मानुभूति के लिए सत्य विचार आचरण एवं उच्च चरित्र का होना भी अत्यंत आवश्यक है।

8. आध्यात्मिक शक्तियों के आधार पर मानव विकास – आदर्शवाद के अनुसार मानव विकास आध्यात्मिक शक्तियों के आधार पर होता है, क्योंकि इन्हीं शक्तियों के माध्यम से सभ्यता, संस्कृति, कला, नीति और धर्म का विकास होता है।

9. राज्य की सत्ता सर्वोच्च है – प्लेटो, हीगेल, फिशरे आदि आदर्श वादियों ने हर प्रकार से राज्य की सत्ता को महत्वपूर्ण माना है।

10. आत्मानुभूति परम लक्ष्य है –आदर्शवाद की मान्यताओं के अनुसार जब मनुष्य को सत्यता का ज्ञान हो जाता है तो उसे परम आनंद की प्राप्ति होती है तथा यही स्थिति आत्मानुभूति की स्थिति होती है। आत्मानुभूति ही मनुष्य का परम लक्ष्य है।

आदर्शवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य –

1 आध्यात्मिक विकास – आदर्श वादियों के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव का आध्यात्मिक विकास करना है। आध्यात्मिक विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह आध्यात्मिक मूल्यों अर्थात सत्यम शिवम सुंदरम की प्राप्ति के लिए यथा योग्य प्रयास करें। आदर्श वादियों के अनुसार रस्क महोदय ने शिक्षा का उद्देश्य प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि शिक्षा को मानव को उसकी संस्कृति के जरिए से अधिकाधिक पूर्ण रूप से आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रविष्ट होने योग्य बनाना चाहिए।

2. सांस्कृतिक परंपराओं की रक्षा एवं विकास – आदर्शवाद मानव को ईश्वर की सबसे महान एवं सुंदर कृति समझता है। उसके अनुसार केवल मनुष्य ही एक ऐसा बुद्धि युक्त प्राणी है जो आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों में भाग लेता है। वह अपनी शक्तियों के द्वारा साहित्य, कला, धर्म, आचार शास्त्र आदि का सृजन करता है। शिक्षा का यह परम उद्देश्य है कि वह मानव को पूर्वजों से प्राप्त सांस्कृतिक परंपराओं की रक्षा और उन को विकसित करने के लिए सहयोग प्रदान करें।

3. आत्म साक्षात्कार अथवा आत्मानुभूति – आदर्श वादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मानव को आत्म साक्षात्कार अथवा आत्मानुभूति करने में सहायता प्रदान करता है। जब मनुष्य आत्मसाक्षात्कार कर लेता है तो वह प्लेटो द्वारा वर्णित आदर्श आत्मा अथवा आदर्श व्यवस्था को प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। आदर्श वादियों के अनुसार आत्म साक्षात्कार करना कुछ ही लोगों का उद्देश्य नहीं है, अपितु सब लोगों के शैक्षणिक प्रयासों का उद्देश्य होना चाहिए। हर व्यक्ति को उत्तम वातावरण प्रदान करना चाहिए जो कि उसे आत्म साक्षात्कार करने के लिए मार्ग प्रदर्शित करें।

4. व्यक्ति एवं विश्वा में एक समन्वय तथा समरसता उत्पन्न करना – शिक्षा का आदर्शवादी उद्देश्य प्रस्तुत करते हुए ऐडम्स महोदय लिखते हैं कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति एवं विश्व में समन्वय तथा समरसता उत्पन्न करना होना चाहिए। क्योंकि विश्व का संचालन एक विशेष शक्ति

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

द्वारा हुआ करता है। विश्व में अनेकता में एकता का सिद्धांत उपस्थित करता है। विश्व में समस्त वस्तुएं सम कारण होती है। उनको भली–भांति समझा जा सकता है। विश्व की समरसता को बनाए रखने के लिए शिक्षा का परम उद्देश्य है कि वह बालकों को बुद्धिमान एवं विवेकशील बनाए।

5. पवित्र जीवन की प्राप्ति – आदर्श वादियों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है पवित्र जीवन की प्राप्ति करना। प्रसिद्ध आदर्शवादी दार्शनिक फ्रोबेल ने लिखा है कि , ''शिक्षा का उद्देश्य भक्ति पूर्ण पवित्र तथा कलंक रहित अर्थात पवित्र जीवन की प्राप्ति है। शिक्षा का मनुष्य को पथ प्रदर्शन इस प्रकार करना चाहिए कि उसे अपने आप को सामना करने का एवं ईश्वर से एकता स्थापित करने का स्पष्ट ज्ञान हो।''

प्रकृतिवाद (Naturalism) :– प्रकृतिवाद के दर्शन के अनुसार, प्रकृति अपने आप में पूर्ण तत्त्व है। इस दर्शन के अनुसार, प्रत्येक वस्तु प्रकृति से उत्पन्न होती है और फिर उसी में विलीन हो जाती है। प्रकृतिवादी इन्द्रियों के अनुभव से प्राप्त ज्ञान को ही सच्चा ज्ञान मानते हैं तथा उसके अनुसार, सच्चे ज्ञान की प्राप्ति के लिये मनुष्य को स्वयं निरीक्षण–परीक्षण करना चाहिए। प्रकृतिवादियों के मतानुसार, मनुष्य की अपनी एक प्रकृति होती है जो पूर्णरूप से निर्मल है, उसके अनुकूल आचरण करने में उसे सुख और सन्तोष होता है तथा प्रतिकूल आचरण करने पर उसे दुःख और असन्तोष का अनुभव होता है, इसलिए प्रकृतिवादियों के अनुसार, मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुकूल ही आचरण करना चाहिए। दूसरे शब्दों में प्रकृतिवादी मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुकूल आचरण करने की स्वतन्त्रता देते हैं तथा वे उसे किन्हीं सामाजिक नियमों एवं आध्यात्मिक बन्धनों में जकड़कर नहीं रखना चाहते। इस प्रकार वे प्राकृतिक नैतिकता के पक्षधर हैं।

प्रकृतिवाद के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्न प्रकार हैं –

जेप्स वार्ड – "प्रकृतिवाद वह विचारधारा है जो प्रकृति को ईश्वर से अलग करती है, आत्मा को पदार्थ अथवा भौतिक तत्त्व के अधीन मानती है और अपरिवर्तनशील नियमों को सर्वोच्च मानती है। "

जे० एस० रॉस – "प्रकृतिवाद एक ऐसा शब्द है जिसका शिक्षा सम्बन्धी सिद्धान्तों में उन शिक्षा प्रणालियों के लिये प्रयोग किया जाता है जो स्कूलों और पुस्तकों पर आधारित होने के बजाय शिक्षार्थी के वास्तविक जीवन को क्रियात्मक रूप से प्रभावित करने का प्रयास करती है। "

थॉमस और लैंग – "प्रकृतिवाद, आदर्शवाद के विपरीत मन को पदार्थ के अधीन मानता है और यह विश्वास करता है कि अन्तिम वास्तविक भौतिक है आध्यात्मिक नहीं।"

<u>प्रकृतिवाद के रूप (Forms of Naturalism)</u>

(1) पदार्थवादी प्रकृतिवादी (Physical Naturalism) – यह बाह्य प्रकृति से सम्बन्धित प्रकृतिवादी है जो पदार्थ–जगत् (Physical world) के अनुसार मनुष्य को जानने का प्रयास करता है। इसमे शिक्षा जगत् को कोई योगदान नहीं दिया है।

(2) यन्त्रवादी प्रकृतिवाद (Mechanical Naturalism) – इस वाद के अनुसार, विश्व एक प्राणविहीन यन्त्र है जिसका निर्माण पदार्थ व गति के द्वारा हुआ है। इस वाद के अन्तर्गत मनुष्य के चेतन तत्त्व की अपेक्षा करके यह माना जाता है कि मनुष्य भी इस बड़े यन्त्र का भाग है तथा अपने में वह पूर्ण यन्त्र भी है। इसका संचालन बाह्य प्रभावों द्वारा होता रहता है। इस वाद ने 'व्यवहारवादी मनोविज्ञान' (Psychology of Behaviourism) को जन्म दिया।

(3) जैविक प्रकृतिवाद (Biological Naturalism) – यह वाद पशु और मनुष्य के विकास की निरन्तरता में विश्वास करता है। 'जीवन के लिये संघर्ष' और 'सबसे उपयुक्त का अस्तित्त्व' इसके दो प्रमुख सिद्धान्त हैं।

प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्त (Basic Principles of Naturalism) – प्रकृतिवाद के मूल सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं –

(1) संसार का कर्ता और कारण दोनों स्वयं प्रकृति हैं। प्राकृतिक तत्त्वों के संयोग से रचना होती है. तथा विघटन से उसका अन्त होता है। यह संयोग और विघटन की क्रिया कुछ निश्चित नियमों के अनुसार होती है। पानी से बर्फ और बर्फ से पानी बन जाने की क्रिया प्राकृतिक परिवर्तन का ही एक उदाहरण है।

(2) यह भौतिक संसार ही सत्य है, आध्यात्मिक संसार मात्र एक कल्पना है। पदार्थ न कभी बनता और न उसका कभी नाश होता है, वह मात्र रूप परिवर्तन करता है।

(3) संसार प्रकृति द्वारा निर्मित है। प्राणियों में चेतन तत्त्व (आत्मा) के विकास के प्रश्न के सम्बन्ध में प्रकृतिवादी कहते हैं कि प्रकृति के पदार्थ परमाणुओं के संयोग से बनते हैं और परमाणु इलैक्ट्रोन्स, प्रोटोन्स तथा न्यूट्रोन्स के संयोग से बनते हैं जिनमें क्रियाशीलता पाई जाती है। इनके कारण ही जड़ जीव में चेतना का विकास होता है। प्रकृतिवादियों के अनुसार, आत्मा पदार्थजन्य चेतन तत्त्व है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

(4) जैविक प्रकृतिवादियों के अनुसार मनुष्य का विकास निम्न प्राणी से उच्च प्राणी के रूप में हुआ है। दूसरे प्राणियों के समान मनुष्य भी कुछ मूल शक्तियाँ (प्राकृतिक) लेकर पैदा होता है। लेकिन बाह्य वातावरण से उत्तेजना प्राप्त कर ये शक्तियाँ क्रियाशील होती हैं तथा मनुष्य का व्यवहार निश्चित होता है।

(5) प्रकृतिवाद मनुष्य को संसार की श्रेष्ठतम रचना स्वीकार करता है। जैविक प्रकृतिवादियों के अनुसार, अन्य पशुओं की अपेक्षा मनुष्य में कुछ ऐसी शक्तियाँ हैं जिनके द्वारा वह अन्य पशुओं से उच्च है तथा इसका प्रमुख कारण मनुष्य की बुद्धि है।

(6) प्रकृतिवाद का दृष्टिकोण पूर्णतः भौतिकवादी है। उनके अनुसार, मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुख प्राप्त करते हुये जीना है।

(7) प्रकृतिवादियों के मतानुसार, मनुष्य दुखी इसलिये है क्योंकि वह सभ्यता एवं विकास की दौड़ में प्रकृति से दूर हो गया है। प्रकृतिवादी, वस्तुतः, मनुष्य को उसकी प्रकृति के अनुसार स्वतन्त्र वातावरण में रखकर उसके स्वतन्त्र विकास पर बल देते हैं।

(8) जैविक प्रकृतिवादियों के अनुसार, वही व्यक्ति जीवित रह सकता है जो अपनी जीवन रक्षा कर सके, जो प्राकृतिक वातावरण से सामंजस्य स्थापित कर सके तथा जिसमें अपनी परिस्थितियों पर नियन्त्रण रखने की शक्ति हो ।

(9) प्रकृतिवादियों के अनुसार, राज्य की केवल व्यावहारिक सत्ता है। उसे व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास में बाधा डालने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिये।

व्यवहारवाद (Pragmatism) :– व्यवहारवाद आदर्शवाद और प्रकृतिवाद के बीच में एक मार्ग अपनाता है। व्यावहारिकता शब्द ग्रीक शब्द ''प्रग्मा'' से लिया गया है जिसका अर्थ है क्रिया। व्यावहारिकता को अन्यथा वाद्यवाद या प्रकार्यवाद के रूप में जाना जाता है। चूंकि अनुभव द्वारा सीखने और सीखने पर जोर दिया गया था, इसलिए इसे प्रयोगवाद भी कहा जाता है।

परिभाषाः रॉस के अनुसार, व्यावहारिकता अनिवार्य रूप से एक मानवतावादी दर्शन है जो यह सुनिश्चित करता है कि मनुष्य गतिविधि के दौरान अपने स्वयं के मूल्यों का निर्माण करता है, कि वास्तविकता अभी भी बनाने में है, और भविष्य से अपने हिस्से के पूरा होने की प्रतीक्षा कर रही है।

व्यावहारिकता के सिद्धांत (Principles of pragmatism) :–

- मनुष्य को अनिवार्य रूप से एक जैविक और सामाजिक जीव माना जाता है।
- ज्ञान को प्रयोगात्मक रूप से सत्यापित किया जाना चाहिए और यह शिक्षार्थी के लिए उपयोगी होना चाहिए। व्यावहारिकता मनुष्य की अपनी नियति को आकार देने की क्षमता में विश्वास रखती है।
- कोई निरपेक्ष मान नहीं हैं, सभी मान सापेक्ष हैं। जो उपयोगी के रूप में कार्य करता है वह मूल्य बन जाता है।
- केवल वही सिद्धांत सत्य हैं जो व्यावहारिक परिस्थितियों में काम कर सकते हैं।
- व्यावहारिकवादी वर्तमान और तत्काल भविष्य से अधिक चिंतित है।
- व्यावहारिकता केवल उस ज्ञान को स्वीकार करती है जो अनुभवजन्य है, अर्थात, जिसे संवेदी स्तर पर अनुभव किया जा सकता है।

व्यावहारिकता और शिक्षण के तरीके (Pragmatism and methods of teaching) :–

- प्रगतिशील सीखने का सिद्धांत
- करके सीखने का सिद्धांत
- एकीकरण का सिद्धांत

व्यावहारिकता और शिक्षा के उद्देश्य (Pragmatism and aims of education) :–

- व्यक्ति का सामंजस्यपूर्ण विकास
- निरंतर अनुभव
- सामाजिक दक्षता

मानवतावाद (Humanism) :– मानवतावाद को मूलतः मनुष्य जाति के प्रति नैतिक दृष्टि रूप में देखा जाता है। जहा दयालुता, परोपकार सहानुभूति जैसे गुणों को मनुष्यता के लिए सार्वभौमिक माना जाता है। इसके अनुसार पीड़ा और यातना के संदर्भ में किसी के प्रति लिंग, प्रजाति, राष्ट्रीयता, धर्म के आधार पर कोई भेद–भाव नहीं रखा जाता है। मानवीय उच्चतर मूल्यों को ' मानवतावाद ' कहा जाता है मानवीय उच्चतर मूल्य का अर्थ है स्वार्थ से ऊपर उठकर दूसरों के हित में कार्य करना को मानव अर्थ किसी मानव से घोषणा न करें संसार के सब मानव परस्पर

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

मेलजोल से रहें सब मानव एक दूसरे की स्वतंत्रता का सम्मान करें। समानता तथा समान लाभ के सिद्धांत के आधार पर परस्पर एक दूसरे को सहयोग करें विवाद व झगडो का निपटारा शान्तिमय तरीको से निपटा ले। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मानवतावाद वह है कि जिसमें मानव अन्य लोगों दुःख दर्द को महसूस करें और उनके सुखी जीवन के मार्ग में बाधक न बनकर उनके प्रगति व विकास पर बल दें।

मानवतावाद की परिभाषा – मैसलो ने मानवतावाद को कुछ इस रूप में प्रस्तुत किया है – मानवतावाद शब्द का प्रयोग लेखकों ने भिन्न–भिन्न रूप में किया है, इनमें एक अर्थ है कि मानव ही मानव चिंतन का आधार है और ईश्वर जैसी कोई शक्ति नहीं है और न ही कोई अतिमानवीय नोट वास्तविकता है जिससे इसे जोड़ा जा सके।

एम. एन. राय के अनुसार – ''नवीन मानवतावाद व्यक्ति को सम्प्रभुता की घोषणा करता है। वह इस मान्यता को लेकर चलता है कि एक ऐसे समाज का निर्माण करना संभव है जो तर्क पर आधारित हो तथा नैतिक हो क्योंकि मनुष्य प्रकृति से ही तर्कशील विवेकी एवं नैतिक प्राणी है नवीन मानवतावाद विश्वव्यापी है।

मानवतावाद के संबंध में नेहरू ने कहा था, '' पर सेवा , पर सहायता और पर हितार्थ कर्म करना ही पूजा है और यही हमारा धर्म है यही हमारी इंसानियत है।''

मानवतावाद के मूल सिद्धांत – मानवतावाद की तत्व मीमांसा, ज्ञान एवं तर्क मीमांसा और मूल्य एवं आचार मीमांसा को यदि हम सिद्धांतों के रूप में बाँधना चाहें तो निम्नलिखित रूप में बाँध सकते हैं।

1. इस संसार की कोई नियामक सत्ता नहीं है – मानवतावादियों की दृष्टि से विश्व की अपनी सृजनात्मक शक्तियाँ हैं, यह उन्हीं शक्तियों द्वारा निर्मित है, इसका कर्ता कोई अन्य नहीं है।

2. यह भौतिक जगत सत्य है, इसके अतिरिक्त कोई ध्यात्मिक जगत नहीं है – मानवतावादी इस भौतिक जगत को ही सत्य मानते हैं और इसकी समस्त वस्तुओं एवं क्रियाओं को सत्य मानते हैं। इनका तर्क है कि मनुष्य को इसी वस्तुजगत में जीना है, उसके लिए यही सत्य है। ये इस संसार को परिवर्तनशील एवं विकासशील मानते हैं। इसके अतिरिक्त ये अन्य किसी संसार में विश्वास नहीं करते।

3.. ईश्वर का कोई अस्तित्व नहीं है – मानवतावादी विचारकों ने मनुष्य के भौतिक सुख के विषय में ही सोचा है। उनकी दृष्टि से ईश्वर मनुष्य के इस कार्य में कोई सहायता नहीं करता। वैसे भी इनके अनुसार सृष्टि में ईश्वर नाम की कोई वस्तु नहीं है, उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

4. मनुष्य सृष्टि के विकास की चरम सीमा है – मानवतावादी विचारकों की दृष्टि से मनुष्य न केवल साधारण जीव है और न केवल मशीन अपितु वह विवेकशील प्राणी है, रचनात्मक जीव है और विकास की असीम संभावनाओं से युक्त है।

5. मनुष्य का विकास उसके स्वयं के उफपर निर्भर करता है – मानवतावादी ईश्वर और भाग्य में विश्वास नहीं करते, ये मनुष्य के कर्म में विश्वास करते हैं। इनकी दृष्टि से मनुष्य की सृष्टि से जो शारीरिक एवं बौ(िक क्षमताएँ प्राप्त हैं, वे ही उसके विकास के मूल आधार हैं।

6. मनुष्य जीवन का उद्देश्य सुखपूर्वक जीना है – मानवतावादियों का सुख से तात्पर्य भौतिक सुख भर से है, ये भौतिक संतुष्टि को ही सुख मानते हैं।

7. सुखपूर्वक जीने के लिए भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति आवश्यक है – मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं के विषय में मानवतावादी एक मत नहीं हैं, कुछ उसकी केवल वस्तुगत आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल देते हैं और कुछ उसकी वस्तुगत आवश्यकताओं के साथ–साथ उसकी भावात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति पर भी बल देते हैं।

8. किसी भी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मानवीय मूल्यों का पालन आवश्यक है – मानवतावादियों का स्पष्ट मत है कि संसार के सभी मनुष्यों की वस्तुगत एवं भावात्मक आवश्यकताओं की समान रूप से पूर्ति तभी हो सकती है जब सभी मनुष्य मानवीय मूल्यों का पालन करें। इनकी दृष्टि से 'सबकी भलाई' सबसे बड़ा मानवीय मूल्य है। इसके लिए इन्होंने प्रेम और सहयोग पर सबसे अधिक बल दिया है।

9. राज्य का मुख्य कार्य व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा करना है – मानवतावादी राज्य द्वारा व्यक्ति के शोषण के विरोधी हैं। उनकी दृष्टि से राज्य को व्यक्ति की स्वंतत्रता की रक्षा करनी चाहिए और साथ ही समष्टि के हित की रक्षा करनी चाहिए। यह तभी संभव है जब राज्य मनुष्य के मानवीय अधिकरों की रक्षा करे और उन्हें मानवीय कार्यों की ओर प्रवृत्त करें। उनकी दृष्टि से यह सब लोकतंत्र में ही संभव है मानवतावादी लोकतंत्र शासन प्रणाली के समर्थक हैं।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

UNIT :– 2.3 Prominent Educational Philosophers— John Dewey, Kilpatrick, Rousseau, —their principles and aims of education (प्रमुख शैक्षिक दार्शनिक– जॉन डेवी, किलपैट्रिक, रूसो, — उनके शिक्षा के सिद्धांत और उद्देश्य)

जॉन डीवी का जीवन परिचय (John dewey ka jivan parichay) – जॉन डीवी (John dewey) का जन्म 1859 में अमेरिका में वॉरमॉन्ट के वर्लिगटन नगर में हुआ था। उनके पिता आर्चवाल्ट ड्यूवी था। फलवाद का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ड्यूवी का शिक्षा दर्शन को माना गया है। आधुनिक काल में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका(USA) में जनतंत्रीय शिक्षा का सबसे बड़ा व्याख्याता (Assistant professor) जॉन डीवी (John Dewey) को माना गया है। वे व्यवहारवाद के प्रसिद्ध दार्शनिक थे। 19 वर्ष की अवस्था में उन्होंने दर्शनशास्त्र में सबसे अधिक अंक प्राप्त करके वरमाण्ट विश्वविद्यालय में बीए की डिग्री प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने मिनेसोटा मिशीगन और शिकागो विश्व विद्यालय में दर्शनशास्त्र का अध्ययन करते रहे। शिकागो विश्वविद्यालय में उन्होंने दर्शनशास्त्र के साथ साथ शिक्षा शास्त्र भी पढ़ाया। तभी से उन्हें शिक्षा में रूचि हो गई। उसके बाद वे शिकागो में प्रोग्रेसिव स्कूल नाम का एक विद्यालय की स्थापना 1896 ईसवी में की। जिसमें करके सीखने के सिद्धांत को कार्य रूप में परिणत किया गया। इस सिद्धांत में डीवी ने अपने दर्शन के आधार पर शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रयोग किए।

शिकागो छोड़कर वह कोलंबियन विश्व विद्यालय पहुंचा वहां उन्होंने अनेक सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। सन 1930 तक काम करने के बाद डीवी अवकाश प्राप्त की उन्हें एक महान दर्शनिक माना गया और देश–विदेश में उन्हें सम्मान दिया गया तथा इसी समय उन्हें डॉक्टर की उपाधि से भी विभूषित किया गया। उनके विचारों का प्रभाव अमेरिका से बाहर रूस तुर्की चीन आदि देशों में देखा गया। आधुनिक जनतंत्रीय शिक्षा प्रणाली पर ड्यूवी के विचार विद्यमान है। जॉन डीवी अपने घर के सदस्य (परिवार) के विचारों पर आचरण(अमल) करते था। उनके कुल 6 बच्चे थे। जॉन डीवी दर्शन और शिक्षा की समस्या का हल अपने बच्चों के साथ खेलते–खेलते प्राप्त किए थे बल्कि उन्होंने स्वयं अमल करके सीखा। सन् 1952 में इस (जॉन डीवी) महान दार्शनिक एवं शिक्षा शास्त्री का निधन हो गया।

जॉन डीवी(John dewey) मानते थे कि शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है वे शिक्षा को ना तो साध्य और ना ही मनुष्य जीवन की तैयारी का साधन ही मानते थे। यह तो स्वयं जीवन है। इनका मानना था कि मनुष्य कुछ जन्मजात शक्तियां लेकर पैदा होता है सामाजिक चेतना में भाग लेने से उनकी इन शक्तियों का विकास होता है। जॉन डीवी(John dewey) ने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक और सामाजिक पक्ष कहा है मनोवैज्ञानिक पक्ष में बालक की जन्मजात शक्तियां, रुचियां एवं व्यक्तिगत विशेषताएं आती है और सामाजिक पक्ष में समाजिक दशाएं परिवार पास पड़ोस संघ समूह सभ्यता संस्कृति आते हैं जॉन डीवी का कहना है कि मनुष्य समाज में रहकर नित्य नए–नए अनुभव करता है। और इन अनुभवों में से समाज का अनुभव का चुनाव करता है। इनके अनुसार "शिक्षा अनुभव के पुनर्निर्माण की प्रक्रिया हैं।"

जॉन डीवी के अनुसार मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी विशेषता विकास है। यह विकास अनेक दिशाओं में होता है–

- शारीरिक विकास
- मानसिक विकास
- सामाजिक विकास

इस विकास से ही मनुष्य अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक पर्यावरण पर नियंत्रण रखता है और जो प्राप्त किया जा सकता है उसे प्राप्त करता है।

जॉन डीवी के शिक्षा के अन्य पक्ष

१. **जन शिक्षा** – जॉन डीवी(John dewey) लोकतंत्र के समर्थक थे और समाज को आदर की दृष्टि से देखते थे। उन्होंने लोकतांत्रिक शिक्षा को मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार मानते थे तथा उसकी व्यवस्था करना राज्य का अनिवार्य कर्तव्य मानते थे। जॉन डीवी के अनुसार राज्य के सभी बच्चों को विकास का समान अवसर मिलना चाहिए।

२. **स्त्री शिक्षा** – जॉन डीवी लोकतंत्र के समर्थक थे और लोकतंत्र स्त्री पुरुष में कोई भेद नहीं करता सभी को अपनी रुचि रुझान योग्यता और आवश्यकता अनुसार विकास का स्वतंत्र अवसर मिलना चाहिए। जॉन डीवी के अनुसार स्त्री पुरुष दोनों को शिक्षा का सम्मान अवसर मिलनी चाहिए।

३. **व्यवसायिक शिक्षा** – इनके द्वारा ना तो शिक्षा का कोई निश्चित उद्देश्य है और ना तो पाठ्य चर्चा की कोई निश्चितता बल्कि सामाजिक कुशलता की चर्चा करते हुए उन्होंने मनुष्य को रोजी रोटी कमाने पर बल दिया है। इनके इन विचारों से व्यवसायिक शिक्षा को बढ़ावा मिलता है।

५. **धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा** – जॉन डीवी अपने प्रारंभिक काल में आदर्शवाद से प्रभावित थे उस समय उन्होंने धार्मिक एवं नैतिक महत्व को मानते थे। बाद में वे जेम्स के प्रयोगवाद से प्रभावित हुए। वह प्रत्येक ज्ञान और क्रिया को वास्तविक जीवन की कसौटी पर कसने लगे और व्यक्ति के जीवन के लिए क्या उपयोगिता है उसे देखते हुए ज्ञान एवं कार्य का समर्थन करने लगे।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

जॉन डीवी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य – जॉन डीवी जीवन के किसी अंतिम उद्देश्य में विश्वास नहीं करते थे। वे शिक्षा को साध्य एवं साधन न मानते हुए जीवन मानते थे। उनके जीवन में शिक्षा का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं हो सकता। उनके अनुसार यदि शिक्षा का कोई उद्देश्य है तो सिर्फ मनुष्यों के गुणों का विकास करना। वर्तमान जीवन को कुशलतापूर्वक जीवन के लिए जीवन का रास्ता प्रसस्त हो सके।

जॉन डीवी के शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

१.अनुभवों का पुनर्निर्माण और पर्यावरण के साथ समायोजन – जॉन डीवी के अनुसार मानव जीवन गतिशील हैं परिवर्तन शील है। अतः उसकी शिक्षा भी गतिशील एवं परिवर्तनशील होना चाहिए।

२. सामाजिक कुशलता का विकास – जॉन डीवी के अनुसार मनुष्य जो कुछ विचार करता है वह समाज में रहकर उसकी चेतना में भाग लेकर ही करता है।

३. वातावरण के साथ अनुकूलन – जॉन डीवी ने लिखा है कि शिक्षा की प्रक्रिया समायोजन की एक निरंतर प्रक्रिया है जिसका प्रत्येक अवस्था में उद्देश्य होता है।

४. गतिशील एवं लचीलापन का निर्माण – जॉन डीवी ने शिक्षा का एक तत्कालिक उद्देश्य गतिशील एवं लचीले मनका निर्माण मानते हैं। यदि हम समाजिक प्रयोगवादी पद्धति चाहते हैं तो हमें पूर्व निर्धारित मूल्यों का परित्याग करना होगा।

५. लोकतंत्रीय जीवन का प्रशिक्षण – जॉन डीवी लोकतंत्र के समाज के समर्थक थे। समाज के कार्यों में भाग लेने के लिए व्यक्ति में सात प्रकार की क्षमता होनी चाहिए नागरिकता, कार्य करने की क्षमता, योग गृहस्थ, व्यवसाय, स्वस्थ शरीर, अवकाश का उचित उपयोग, नैतिकता एवं चरित्र निर्माण।

जॉन डीवी के अनुसार पाठ्यक्रम – शिक्षा का पाठ्यक्रम और विधि बालक की मूल प्रवृत्तियों और शक्तियों के आधार पर निश्चित की जानी चाहिए। बालक की शिक्षा उसकी रूचिओं के अनुसार देनी चाहिए उनका मानना था कि परंपरागत विषय केंद्रित पाठ्यक्रम दूषित है। उन्होंने माना है कि कृत्रिमता से दूर बच्चों के वास्तविक जीवन की क्रियाओं पर आधारित होनी चाहिए। वे पाठ्य चर्चा के निर्माण में बच्चों की मनोवैज्ञानिक स्थिति सामाजिक स्थिति और विषय एवं क्रियाओं की उपयोगिता पर बल देते थे और उन्हें पाठ्यक्रम के निर्माण का आधार बनाये जो निम्नलिखित हैं–

- पाठ्यक्रम बाल एवं समाज केंद्रित होनी चाहिए।
- पाठ्यक्रम बच्चों की रुचि पर आधारित होनी चाहिए।
- पाठ्यक्रम उपयोगी होनी चाहिए।
- पाठ्यक्रम अनुभव चमक होनी चाहिए।
- पाठ्यक्रम को जीवन से निकटतम संबंध रखनी चाहिए।

जॉन डीवी की शिक्षण विधि – जॉन डीवी(John dewey) मनुष्य को सामाजिक प्राणी मानते थे और वह मानते थे कि मनुष्य का विकास जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेने से होता है। उनके अनुसार शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है उन्होंने शिक्षा पद्धति के विषय में महत्वपूर्ण विचार दिए हैं जो उनकी पुस्तक हाउ वी थिंग तथा इनट्रेस्ट एंड एफर्ट इन एजुकेशन में देखा गया है। उनका सबसे प्रसिद्ध सिद्धांत करके सीखने का सिद्धांत है। उनके अनुसार सबसे अच्छी पद्धति वह है जिसमें बच्चे स्वयं कार्य करके विभिन्न विषयों को सीखते हैं। जॉन डीवी(John dewey) के अनुसार शिक्षा पद्धति में बालक के जीवन क्रियाओं और विषयों में एकता स्थापित की जानी चाहिए। शिक्षा पद्धति को बालक की रूचि पर आधारित होनी चाहिए जॉन डीवी ने शिक्षा में दो तत्वों को विशेष महत्वपूर्ण स्थान दिया है –

- रुचि
- प्रयास

जॉन डीवी के अनुसार शिक्षक का स्थान – शिक्षक समाज का सेवक है उन्हें विद्यालय में ऐसा वातावरण का निर्माण करना चाहिए जिसमें पलकर बालक के सामाजिक व्यक्तित्व का विकास हो सके और वे जनतंत्र का योग्य नागरिक बन सके। विद्यालय में स्वतंत्रता और समानता के मूल्य को बनाए रखने के लिए शिक्षक को अपने को बालकों से बड़ा नहीं समझना। उन्हें आज्ञाओं और उपदेशों के द्वारा अपने विचारों और प्रवृत्तियों को बालकों पर लादने का प्रयास नहीं करना चाहिए। बालकों का निरीक्षण करके उनकी रूचियों योग्यताओं और गतिविधियों को समझ कर उसके अनुरूप कार्यों में लगाना चाहिए।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

प्रयोजना विधि – (Project Method) – प्रयोजन विधि का मूलाधार जॉन ड्यूवी (John Dewey) की विचारधारा है। ड्यूवी के शिष्य **किलपैट्रिक** ने ड्यूवी की विचारधारा पर प्रयोजना विधि (Project method of teaching) का प्रतिपादन किया।

प्रयोजन विधि की परिभाषाएँ – (Definition of project method)

किलपैट्रिक (W-H- Kilpatrick) के अनुसार, ''हम चाहते हैं कि शिक्षा वास्तविक जीवन की गहराई में प्रवेश करे, केवल सामाजिक जीवन में ही नहीं वरन उस उत्तम जीवन में जिसकी हम आशा करते है।''

पार्कर के अनुसार, ''प्रोजेक्ट कार्य की एक इकाई है, जिसमें छात्रों को कार्य की योजना और सम्पन्नता के लिए उत्तरदायी बनाया जाता है।''

बेलार्ड के अनुसार, ''प्रोजेक्ट यथार्थ जीवन का एक ही भाग है जो विद्यालय में प्रयोग किया जाता है।''

स्टीवेन्सन के अनुसार, '' प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है, जो स्वाभाविक स्थिति में पूरा किया जाता है।''

प्रायोजन विधि के आधारभूत सिद्धान्त – Basic Principles of the Project Method – प्रायोजना विधि निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है –

1. **रोचकता** – बालक स्वयं ही किसी समस्या के प्रोजेक्ट या कार्य को चुनते है।

2. **प्रयोजना उद्देश्य** – जो समस्या बालकों को हल करने के लिए दी जाती है वह उद्देश्यपूर्ण होती है।

3. **क्रियाशीलता** –बालक स्वभाव से ही क्रियाशील है। उनके अन्दर जिज्ञासा, चिन्तन, तर्क–शक्ति तथा संग्रह आदि की जो प्रवृत्तियाँ हैं, वे उन्हें किसी क्रिया के लिए प्रेरित करती हैं। प्रोजेक्ट विधि में बालक एवं शिक्षक क्रियाशील रहते हैं। इससे स्थाई एवं उपयोगी शिक्षा प्राप्त होती है।

4. **वास्तविकता या यथार्थता** – प्रोजेक्ट के द्वारा जो भी कार्य कराया जाता है वह वास्तविक परिस्थितियों के अनुकूल होता है जिसके फलस्वरूप बालकों को प्रेरणा मिलती है। अतः शिक्षा को बालकों के जीवन सेजोडा जाता है।

5. **सामाजिकता** – बालक समाज का एक अंग है। प्रोजेक्ट विधि द्वारा बालकों को अनेक ऐसे अवसर प्रदान किये जाते हैं जिनके द्वारा उनको सामाजिक जीवन का अनुभव हो सके तथा उनके अन्दर सहयोग, सद्भावना, प्रेम और सहकारिता जैसे सामाजिक गुणों का विकास हो।

6. **उपयोगिता** – उपयोगिता वाले कार्यों में ही बालक की रूचि उत्पन्न होती है। रूचि ही किसी प्रायोजना का मनोवैज्ञानिक तत्व है। अतः प्रोजेक्ट से बालक जो कुछ भी सीखता है, करके सीखता है। यह व्यावहारिता ही सामाजिक उपयोगिता का सबसे बडा आधार है। तत्कालीन आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले प्रोजेक्ट छात्रों के लिए विशेष रूचिकर होते हैं। ड्यूवी ने सामाजिक उपयोगिता को ही शिक्षा का लक्ष्य माना है।

7. **स्वतंत्रता** – शिक्षक का यह दायित्व है कि बालकों को कोई कार्य अपनी ओर से करने के लिए बाध्य न करे। प्रोजेक्ट विधि में बालक आरम्भ से अन्त तक कार्य करने को स्वतंत्र रहता है। छात्र स्वयं योजनाओं का चुनाव एवं उनकी कार्यान्वयन विधियों का निर्धारण करते हैं।

8. **व्यक्तिगत भिन्नता** – बालकों में योग्यता, क्षमता तथा अन्य गुणों के अनुसार व्यक्तिगत भिन्नता पाई जाती है। प्रोजेक्ट विधि में ऐसी ही व्यवस्था है कि बालक अपनीरूचियों और योग्यता के आधार पर काम करते है।

प्रायोजना विधि का महत्व – Importance of planning method – प्रयोजन विधि का महत्व निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट किया जा सकता है।

1. **प्रत्यक्ष अनुभव होना** – इस विधि के द्वारा छात्रों को स्वयं अवलोकन वा मापन आदि के अवसर मिलते हैं जिससे उन्हें स्थिति और तथ्यों का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है। अर्जित ज्ञान स्थायी बनता है।

2.**करके सीखना** – बालक स्वयं 'करके सीखते' हैं, जिससे छात्रों में विषय के प्रति अधिक रूचि, उत्साह और आत्म–विश्वास उत्पन्न होता है।

3. **मनोवैज्ञानिकता** – छात्रों में जिज्ञासा, क्रियाशीलता और रचना की प्रवृत्ति उग्र रूप से विद्यमान रहती है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

4. प्रयोगात्मकता – योजना विधि द्वारा छात्र स्वयं प्रयोग करके, उपकरणों आदि के द्वारा मापन के आधार पर हिन्दी के तथ्यों, सम्प्रत्ययों, उच्चारण, वर्तनी अशुद्धियाँ व परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

5. उपयोगिता या व्यावहारिकता – इस विधि द्वारा सीखे हुए ज्ञान और तथ्यों तथा नियमों को दैनिक जीवन की समस्याओं में उपयोग कर सकता है। उपयोगिता या व्यावहारिकता से प्राप्त ज्ञान का अन्य स्थितियों में और अन्य समस्याओं में उपयोग करना जानता है।

6. स्वाध्याय की प्रवृत्ति – छात्रों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित होती है।

रूसो का शिक्षा दर्शन – **रूसो के शैक्षिक विचार** – रूसो का पूरा नाम जीन जैक रूसो है। जीन जैक रूसो एक प्रसिद्ध प्रकृतिवादी शिक्षा दार्शनिक थे। रूसो का जन्म 28 जून, 1712 ई0 को स्विटजरलैंड के जेनेवा नामक नगर में एक सम्मानित परिवार में हुआ था। रूसो ने बालक को शिक्षा का केन्द्र बिन्दु माना है। शिक्षा से अभिप्राय बालक में पूर्व निश्चित गुणों तथा विचारों को थोपना नहीं, वरन् बालक को प्रत्येक विकासावस्था के अनुरूप शारीरिक, मानसिक और नैसर्गिक क्रियाओं के सुअवसर प्रदान करना है।

रूसो का कथन है कि "शिक्षा वह है जो व्यक्ति के अन्दर से प्रस्फुटित होती है, वह व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों की अभिव्यक्ति है। "

शिक्षा की दृष्टि से रूसो की सर्वप्रसिद्ध रचना एमिल है जिसमें उसने एमिल नाम के एक काल्पनिक बालक को शिक्षा देने की प्रक्रिया का वर्णन किया है। रूसो का शिक्षा सम्बन्धी विचार एमिल तक ही सीमित नहीं है पर रूसो का मूल्यांकन एमिल के आधार पर ही होता है। शिक्षा की दृष्टि से 'दि न्यू हेल्वायज' (1761 ई0) भी महत्वपूर्ण है। इसमें उन्होंने गृह–शिक्षा का वर्णन किया है। इस पुस्तक में रूसो शिशु के प्रति माता के दायित्वों का वर्णन करते हुए उसे प्रारम्भिक काल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण अध्यापक कहा।

रूसो का शिक्षा दर्शन – शिक्षा पर उनके विचार उनके प्रसिद्ध प्रकाशन जैसे, "दि प्रोग्रेस ऑफ आर्ट्स एंड साइन्स", "सोसिएल कान्ट्रेक्ट", "न्यू हेलॉइस" तथा "एमिल" में लिखे गए हैं। रूसो का प्रकृतिवादी दर्शन तीन स्वरूपों को दर्शाता हैः सामाजिक प्रकृतिवाद, मनोवैज्ञानिक प्रकृतिवाद तथा भौतिक प्रकृतिवाद। उनके अनुसार, "प्रत्येक वस्तु प्रकृति के सृजन से आने पर अच्छी होती है, परंतु मनुष्य के हाथों में आने पर वह विघटित हो जाती है।"

उनके अनुसार, केवल प्रकृति ही शुद्ध, स्वच्छ, श्रेष्ठ एवं प्रभावशाली है। मानव समाज पूर्ण रूप से भ्रष्ट है। इसलिए, व्यक्ति को समाज के बंधनों से मुक्त रहना चाहिए एवं "प्रकृति की अवस्था" में रहना चाहिए। मानव स्वभाव आवश्यक रूप से अच्छा होता है तथा इसे मुक्त वातावरण में मुक्त विकास हेतु पूर्ण अवसर दिए जाने चाहिए । रूसो के अनुसार शिक्षा में तीन महत्वपूर्ण पक्ष हैं–

- बच्चे की अन्तर्निहित शक्ति,
- सामाजिक वातावरण तथा
- भौतिक वातावरण।

रूसो ने कहा ''हमलोगों को सामान्य को देखना चाहिए न कि विशेष को, अपने विद्यार्थी को हम अमूर्त मानें।'' इस तरह से रूसो मानव के सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक प्रकृति पर बल देता है, अतः एमिल को प्रजातांत्रिक शिक्षा का स्रोत माना जाता है। रूसो पहला शिक्षाशास्त्री है जो सार्वजनिक शिक्षा पर जोर देता है।

रूसो का शिक्षा – दर्शन इस सिद्धान्त पर आधारित है कि बच्चे को इस तरह से तैयार किया जाय कि वे अपनी स्वतंत्रता का भविष्य में सही उपयोग कर सकें। बड़ों के पूर्वाग्रह से मुक्त रहते हुए बच्चे को अपने बचपन का आनन्द उठाने का अधिकार है।

रूसो के अनुसार बालक की शिक्षा के तीन प्रमुख स्रोत हैं –

- प्रकृति
- पदार्थ
- मनुष्य।

रूसो के अनुसार बालक का विकास प्रकृति तथा पदार्थ के माध्यम से होता है। मानव यानि अध्यापक जब अपनी ओर से शिक्षा देने लगता है तो बच्चे की स्वाभाविक शिक्षा प्रभावित होती है और कुशिक्षा प्रारम्भ हो जाती है। रूसो के अनुसार शिक्षक पर समाज की बुराइयों का इतना अधिक प्रभाव पड़ चुका होता है कि वह बच्चों में सद्गुणों का विकास नहीं कर सकता क्योंकि उसमें स्वयं सद्गुण बचे नहीं रहते हैं। कम

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

से कम प्रारम्भिक स्तर पर बच्चे की शिक्षा में रूसो अध्यापक की कोई भूमिका नहीं देखता है। माता–पिता ही इस अवस्था में बच्चों के सहज शिक्षक होते हैं। उन्हें भी कम से कम हस्तक्षेप करते हुए बच्चे को अपनी प्रकृति के अनुसार विकास करने की स्वतंत्रता मिलनी चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य – रूसो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मानव को प्रकृति के अनुरूप जीवन जीने के योग्य बनाना है। शिक्षा द्वारा मानव संसर्ग के परिणामस्वरूप जो कश्त्रिमता उसमें आती है, उससे उसकी रक्षा करता है। रूसो सामाजिक संस्थाओं और उनमें विद्यमान रूढ़ियों के कटु आलोचक हैं।

रूसो का कहना था '' कमजोर शरीर कमजोर मस्तिष्क का निर्माण करता है।'' रूसो शिक्षा का उद्देश्य नैतिकता का विकास मानते हैं पर नैतिकता का विकास प्राकृतिक परिणामों के द्वारा होना चाहिए न कि व्याख्यानों के द्वारा।

रूसो कहते हैं ''बच्चे के लम्बे अवकाश काल (प्रथम बारह वर्ष) में नैतिक शिक्षा का कोई प्रत्यक्ष पाठ नहीं पढ़ाया जाना चाहिए। एकमात्र नैतिक शिक्षा दी जानी चाहिए ''किसी को आघात मत पहुँचाओं।'' रूसो लोककथाओं द्वारा भी अप्रत्यक्ष रूप से नैतिक शिक्षा देने के विरूद्ध हैं।

छात्र – संकल्पना – रूसो बालक को जन्म से अच्छा और पवित्र मानता है और यह सुझाव देता है कि बालक के प्रकश्त गुणों को शिक्षा के द्वारा समाप्त न किया जाये। रूसो का यह स्पष्ट मत है कि बच्चे को बच्चा रहने दिया जाये– शिक्षा द्वारा कश्त्रिम रूप से उसे अल्पावस्था में ही व्यस्क बनाने का प्रयास न किया जाये। मानव–जीवन के क्रम में बचपन का एक स्थान है, निश्चय ही प्रौढ़ को प्रौढ़ और बच्चे को बच्चा मानकर व्यवहार करना चाहिए।

रूसो बालक पर किसी भी तरह के दबाव डाले जाने का विरोधी है। वह समाज की बुराइयों से बच्चे को बचाना चाहता है। वह उसे प्रसन्न देखना चाहता है। रूसो परम्परागत शिक्षा के अवगुणों पर ध्यान खींचते हुए पूछता है ''उस निर्दयी शिक्षा को क्या कहा जाए, जो वर्तमान को अनिश्चित भविष्य के लिये बलिदान करा देती है, जो बालक को सभी तरह से प्रतिबंधित कर उसके जीवन को भविष्य की ऐसी खुशी के लिए दुखमय बना देती है जो शायद वह कभी प्राप्त न कर सके।''

रूसो प्रकृति की व्याख्या 'स्वभाव' की दश्ष्टि से भी करता है। बालक की रूचि एवं स्वभाव के अनुसार शिक्षा देने की बात सर्वप्रथम कही जाने लगी फलस्वरूप बालकेन्द्रित शिक्षा का आन्दोलन चल पड़ा। पर इन सबके मूल में रूसो की छात्र या बालक संकल्पना ही है।

विद्यार्थी जीवन के सोपान – रूसो ने विद्यार्थी के जीवन को चार भागों में बाँटा है–

- शैशवावस्था
- बाल्यकाल (12 वर्ष की अवस्था तक)
- पूर्व किशोरावस्था (12 से 15 वर्ष) तथा
- किशोरावस्था (15 वर्ष से आगे)

(अ) शैशवावस्था : रूसो का मानना है कि शिक्षा जन्म से ही प्रारम्भ हो जाती है। वे बच्चे की उचित देखभाल का नियम बताते हैं। इस काल में उसके शरीर एवं इन्द्रियों के सही विकास पर ध्यान देना चाहिए। बच्चे की मातश्भाषा में वार्तालाप के द्वारा उनमें भाषा की योग्यता का विकास किया जा सकता है। रूसो बच्चों में आदतों के विकास का विरोध करता है।

(ब) बाल्यकाल : इस काल में भी रूसो लड़कों के लिए किसी भी तरह के पाठ्य पुस्तक के उपयोग का विरोध करता है। वह बारह वर्ष तक एमिल को पुस्तकों से दूर रखना चाहता था। एकमात्र पुस्तक 'राबिन्सन क्रूसो' को छोड़कर। लड़के को निरीक्षण एवं अनुभव के द्वारा सीखने का अवसर मिलना चाहिए। इन्हें अलग से कुछ भी नहीं पढ़ाना चाहिए। इस तरह से निषेधात्मक शिक्षा के संप्रत्यय का विकास हुआ।

(स) पूर्व किशोरावस्था : बारह वर्ष की आयु के उपरांत रूसो बच्चों को तीव्रता से शिक्षा देने की बात कहता है। यह तीव्रता संभव है क्योंकि विद्यार्थी अधिक परिपक्व होता है और ज्ञान को अधिक वस्तुगत या मूर्त तथा व्यावहारिक रीति से दिया जाता है। रूसो कहते हैं ''मुझे बारह वर्ष का एक लड़का दीजिए जो कुछ भी नहीं जानता हो लेकिन पन्द्रह वर्ष की अवस्था में वह उतना जानता होगा जितना उस उम्र का लड़का जो शैशवावस्था से ही शिक्षा प्राप्त कर रहा है, पर इस अन्तर के साथ कि तुम्हारा छात्र रट कर चीजों को जानता है जबकि मेरा विद्यार्थी इन चीजों को कैसे प्रयोग किया जाय जानता है।''

रूसो के अनुसार इस स्तर पर प्राकश्तिक विज्ञान, भाषा, गणित, काष्ठकला, संगीत, चित्रकला, सामाजिक जीवन तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। इस स्तर पर भी पुस्तकों से अधिक जोर विद्यार्थी द्वारा इन्द्रियों के प्रयोग द्वारा अनुभव प्राप्त करने पर होना चाहिए। विज्ञान का अध्ययन लड़के की जिज्ञासा को बढ़ायेगा उसे खोज या अविष्कार हेतु प्रेरित करेगा तथा वह स्वयं सीखने की प्रक्रिया को तेज करेगा।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

चित्रकला आंख और मांसपेशियों को प्रशिक्षित करेगा। शिल्प या हस्त उद्योग लड़के में कार्य करने की क्षमता का विकास करेगा। सामाजिक जीवन में व्यावहारिक अनुभव से वह समझेगा कि मानव एक दूसरे पर निर्भर करेगा, जिससे बच्चा सामाजिक उत्तरदायित्व को समझेगा और उसका निर्वहन करेगा। रूसो का कहना है कि किताबें ज्ञान नहीं देती है वरन् बोलने की कला सिखाती है। अतः पाठ्यक्रम पुस्तकों पर आधारित न होकर कार्य पर आधारित होना चाहिए। इस काल में किशोर को शिक्षा प्राप्त करने एवं कठिन परिश्रम करने के लिए पर्याप्त समय और अवसर मिलना चाहिए।

(द) किशोरावस्था : शिक्षा के चतुर्थ चरण में रूसो नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा पर जोर देता है। नैतिक शिक्षा भी वास्तविक अनुभव के द्वारा होनी चाहिए न कि व्याख्यानों के द्वारा। जैसे कि एक नेत्रहीन व्यक्ति को देखने के बाद किशोर या नवयुवक में सहानुभूति, प्रेम, स्नेह, दया जैसे भावों का स्वतः संचार होता है। धार्मिक शिक्षा भी इसी तरह से देने का सुझाव रूसो ने दिया पर इसके लिए इतिहास, पौराणिक एवं धार्मिक कथाओं का भी उपयोग किया जा सकता है। धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा के अतिरिक्त रूसो शारीरिक स्वास्थ्य, संगीत और यौन शिक्षा को भी महत्व प्रदान करता है।

Unit :– 2.4 Indian Educational Philosophers — Gandhi, Aurobindo, Rabindra Nath Tagore and Vivekanand — their principles and aims of education (भारतीय शैक्षिक दार्शनिक– गांधी, अरबिंदो, रवींद्र नाथ टैगोर और विवेकानंद एवं उनके सिद्धांत और शिक्षा के उद्देश्य)

महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन

महात्मा गाँधी का जीवन परिचय (1869–1948) – महात्मा गाँधी (मोहनदास करमचन्द गाँधी) का जन्म काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक स्थान पर 2 अक्टूबर, 1869 को हुआ। उनके पिता पोरबन्दर के दीवान थे। बाद में उनके पिता राजकोट के दीवान होकर वहाँ गये और वहीं उन्होंने शिक्षा प्रारम्भ की। जब गाँधी जी 16 वर्ष के थे, पिता का देहावसान हो गया। स्कूल में गाँधीजी को धर्म की शिक्षा नहीं मिली, किन्तु आत्मबोध या आत्म–ज्ञान के मार्ग, पर वे चलते रहे और वातावरण से कुछ धार्मिकता उन्हें मिलती रही। गाँधीजी के नेतृत्व में भारत ने 15 अगस्त सन् 1947 को स्वतन्त्रता प्राप्त की। इस महान समाजसेवी एवं दूरदर्शी राजनीतिज्ञको को संकीर्ण मनोवृत्ति के लोग सहन न कर सके और 30 जनवरी, 1948 को नाथूराम गोडसे ने भारत–पाकिस्तान बंटवारे के विवादास्पद बिन्दुओं पर मतान्तर के कारण गोली मारकर उनकी हत्या कर दी।

महादेव देसाई के अनुसार – "गाँधीजी ने प्रायः यह बताया है कि शिक्षा को बालक और बालिका के समस्त गुणों का विकास करना चाहिये। वह शिक्षा ठीक नहीं कही जा सकती, जो बालकों और बालिकाओं को पूर्ण मनुष्य और उपयोगी अच्छे नागरिक नहीं बनाती है।" गाँधीजी के आदर्शवादी विचार ही उनके शिक्षा दर्शन की आधारशिला है। वे हृदय की शिक्षा के साथ–साथ शारीरिक श्रम को भी महत्व देते थे तथा बालक को आज्ञाकारी एवं आत्मानुशासित बनाने की प्रेरणा उनकी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य था। महात्मा गांधी का विश्वास आदर्शवाद में था। उनका आदर्शवाद भारतीय आदर्शवाद के सिद्धान्तों पर आधारित था ।

महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन निम्नलिखित पाँच प्रमुख सिद्धान्तों पर आधारित है– (1) सत्य। (2) अहिंसा। (3) अपरिग्रह । (4) निर्भीकता। (5) सत्याग्रह।

गाँधीजी का शिक्षा–दर्शन – गाँधीजी का शिक्षा दर्शन उनके जीवन–दर्शन पर आधारित है। उनकी सत्य, अहिंसा, त्याग, निष्ठा एवं सहानुभूति आदि मानवीय गुणों में श्रद्धा थी और जीवन–पर्यन्त रही। इन मानवीय मूल्यों को शिक्षा द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। गाँधीजी के जीवन में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक सभी पक्षों को स्थान मिला क्योंकि वे शिक्षा कीउपयोगिता समझते थे। उन्होंने शिक्षा की गतिशीलता के पक्ष को अपने में समाहित किया था।

गाँधीजी के शिक्षा–दर्शन के सिद्धान्त – महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन में निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

(1) शिक्षा द्वारा बालक की शारीरिक, मानसिक तथा चारित्रिक क्षमताओं को विकसित किया जा सकता है। प्रजातान्त्रिक मूल्यों की स्थापना कर बालक में आदर्श नागरिक के गुणों का विकास शिक्षा द्वारा ही सम्भव है।

(2) बालक का सम्यक् विकास (मानसिक शारीरिक एवं आध्यात्मिक) भी शिक्षा द्वारा सम्भव है। शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिये ताकि छात्र में उसके प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण उत्पन्न हो सके।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

(3) शिक्षा को 'उत्पादकता से जोड़ना चाहिये,जिससे बालक में श्रम के प्रति निष्ठा एवं आत्म–निर्भरता का भाव पनप सके। बालको की शिक्षा को क्रियात्मक पक्ष से जोड़ा जाना चाहिये ताकि स्वानुभव को स्थान देकर उसे क्रियान्वित किया जा सके। इसके लिये 'हस्तकला व्यवसाय' को उन्होंने उचित समझा।

(4) शिक्षा के अन्य विषयों का सह–सम्बन्ध हस्त–कौशल के कार्यों से होना चाहिये ताकि सिद्धान्त एवं क्रिया में सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

(5) राष्ट्रीय स्तर पर 7 से 14 वर्ष तक की आयु के बालों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। शिक्षा सत्य, अहिंसा एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित होनी चाहिये।

(6) विद्यालय शिक्षालय' होने चाहिये अर्थात् वहाँ बालक को सक्रिय रहकर शिक्षा ग्रहण करनी है तथा उपयोगी अन्वेषण करना है। शिक्षा द्वारा बालक के लिये विद्यालय ही सामाजिक संस्था मानी जा सकती है, जहाँ कि वह अपने समस्त मानवीय गुणों का विकास करते हुए अपना समाजीकरण करता है।

(7) शिक्षा योजना में सेकण्डरी स्तर तक अंग्रेजी (आंग्ल भाषा) शिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिये।

(8) शिक्षा जब हस्त–कौशल से जुड़ी होगी तो उत्पादन बढ़ेगा। वह उत्पादन व्यक्ति की आर्थिक लाभ देगा क्योंकि सरकार उसे खरीदेगी।

गाँधीजी के अनुसार शिक्षा का अर्थ – महात्मा गाँधीजी के कथनानुसार, "साक्षरता न तो शिक्षा का अन्त है और न शिक्षा का प्रारम्भ। यह केवल एक साधन है, जिसके द्वारा पुरुष और स्त्री को शिक्षित किया जा सकता है।" गाँधीजी ने शिक्षा को सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास का एक सबल साधन बताया है। उनके अनुसार,सच्ची शिक्षा को उन्होंने निम्नलिखित प्रकार से परिभाषित किया "सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों की आध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों को व्यक्त और प्रोत्साहित करे। मस्तिष्क, आत्मा, शरीर एवं हृदय सभी का विकास इस क्रिया के अन्तर्गत आता है।

<u>गाँधीजी के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य</u> –_गाँधीजी ने मानव जीवन के विभिन्न पक्षों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के उद्देश्यों को दो भागों में विभक्त किया है –**(अ) शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य एवं (ब) शिक्षा के सर्वोच्च उद्देश्य। (स) शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य**

शिक्षा के तात्कालिक उद्देश्य

1.सन्तुलित व्यक्तित्व का उद्देश्य – गाँधीजी के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य सन्तुलित व्यक्तित्व का निर्माण कर उसे विकसित करना है। व्यक्तित्व के निर्धारक (मानसिक, संवेगात्मक, शारीरिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक) पक्षों में सन्तुलन एवं सामंजस्य रखते हुए उन्हें विकसित करना है। मानसिक क्रियाओं को संचालित करने के लिये हृदय तथा मस्तिष्क का तारतम्य बने रहना चाहिये एवं उन्हें प्रशिक्षणदभी मिलना चाहिये। शारीरिक विकास हेतु आसन एवं व्यायाम का प्रशिक्षण दिया जाना.चाहिये। गाँधीजी का यह कथन तर्कसंगत है, "शरीर, मन तथा आत्मा का उचित सामंजस्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व की रचना करता है और यही शिक्षा की सच्च मितव्ययता का निर्माण करता है।

2.जीविकोपार्जन का उद्देश्य – गाँधीजी ने शिक्षा को जीविकोपार्जन का प्रमुख उद्देश्य माना है। यदि शिक्षा, जो रोजी–रोटी न दे सके, आत्म–निर्भर न बनाये, बेरोजगार रहने दे, वह व्यर्थ है। बिना आत्म–निर्भरता के व्यक्तित्व का कोई पक्ष विकसित नहीं हो सकता। साथ ही सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं भौतिक क्षेत्र में विकास सम्भव है। गाँधीजी के अनुसार–"शिक्षा को बालकों को बेरोजगारी के विरुद्ध एक प्रकार की सुरक्षा देनी चाहिये। सात वर्ष का कोर्स समाप्त करने के उपरान्त 14 वर्ष की आयु में बालक को कमाने वाले व्यक्ति के रूप में विद्यालय से बाहर भेज दिया जाना चाहिये।"

3.नैतिक या आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य – गाँधीजी ने शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र–निर्माण बताया। वे साक्षरता की अपेक्षा चरित्र–निर्माण पर अधिक बल देते थे। उनके कथनानुसार 'ज्ञान' तभी सार्थक है, जब चरित्र–निर्माण की भूमिका निभाये। गाँधीजी के अनुसार, "समस्त ज्ञान का उद्देश्य चरित्र–निर्माण होना चाहिये। व्यक्तित्व की पवित्रता को समस्त चरित्र–निर्माण का आधार होना चाहिये। चरित्र के बिना शिक्षा और पवित्रता के बिना चरित्र व्यर्थ है।"

4.सांस्कृतिक उद्देश्य – गाँधीजी के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य सांस्कृतिक ज्ञान एवं उसका संरक्षण है। दैनिक जीवन में जो व्यवहार होते हैं, एक सुसभ्य तथा सुसंस्कृत व्यक्ति के लिये वे आवश्यक हैं तथा उनके मूल्य हैं। संस्कृति मानसिक कार्य का परिणाम न होकर आत्मा का गुण है, जो कि व्यवहार के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होता है। अतः उनका कथन है कि "संस्कृति नींव है, प्रारम्भिक वस्तु है। तुम्हारे सूक्ष्म व्यवहार में इस प्रकट होना चाहिये।"

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

5. मुक्ति का उद्देश्य – गाँधीजी के अनुसार, "शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मुक्ति का उद्देश्य है, जिसका अर्थ है, वर्तमान जीवन में सभी प्रकार की दासता से स्वतन्त्रता।" यह दासता सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, भौतिक एवं बौद्धिक कैसी भी हो सकती है? उनका कहना था कि शिक्षा संस्थाओं में प्राप्त ज्ञान द्वारा ही बालक को आध्यात्मिक स्वतन्त्रता का मार्ग दिखाना चाहिये। अतः उनका सीधा अर्थ शिक्षा द्वारा आत्मा को सांसारिक बन्धनों से मुक्त करना है। मुक्ति की भावना शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। कांट ने भी शिक्षा का.मूल उद्देश्य व्यक्ति को आत्म–नियन्त्रण एवं स्वतन्त्रता में सामंजस्य स्थापित करना, सिखलाना बतलाया है। बिना मुक्ति के वह यान्त्रिक हो सकती है।

(ब) शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य – गाँधीजी के अनुसार,शिक्षा का सर्वोच्च उद्देश्य परम सत्य या अन्तिम वास्तविकता (ईश्वर) से साक्षात्कार करना है। सत्य का अन्वेषण एवं आत्मा का ज्ञान आवश्यक है ताकि उसमें नैतिक गुणों का प्रादुर्भाव हो सके तथा उसका चारित्रिक विकल्प खोजा जा सके। आत्मानुभूति या आत्म–साक्षात्व के लिये 'आत्मा' का प्रशिक्षण आवश्यक है।

शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्य – गाँधीजी ने शिक्षा का उद्देश्य सर्वप्रथम वैयक्तिक विकास माना है। वैयक्तिक गुणों के विकार के बिना वह सामाजिक विकास के बारे में कुछ भी सोच नहीं सकते। किसी भी राष्ट्र या समाज के विकास के लिये वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति (जो समाज की एक इकाई है) पूर्णतः विकसित होना चाहिये। गाँधीजी ने वैयक्तिक एवं सामाजिक विकास के उद्देश्य को एक–दूसरे का पूरक कहा है। अतः दोनों में समन्वय करके ही राष्ट्र या समाज का विकास सम्भव है। गाँधी जी ने विद्यालय को सामुदायिक केन्द्र' माना, ताकि दोनों के द्वारा एक–दूसरे के समीप आकर सेवा एवं सामाजिक सम्पर्क किया जा सके। डॉ. एम. एस. पटेल ने इस सम्बन्ध में कहा है कि, "गाँधीजी के दर्शन का सार यह है कि वैयक्तिकता का विकास.सामाजिक वातावरण में हो सकता है, जहाँ समान रुचियों और समान क्रियाओं पर व्यक्ति पोषित हो सकता है।"

गाँधीजी के अनुसार शिक्षण–पद्धति – महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन के अनुसार निम्नलिखित शिक्षण पद्धतियां हैं –

1. अनुभव द्वारा सीखना दृगाँधीजी ने शिक्षण – पद्धति में 'अनुभव' को सर्वोपरि स्थान दिया। ज्ञान तभी ग्रहण किया जा सकता है, जबकि वह स्वानुभव पर आधारित हो। यह स्थायी तथा व्यावहारिक जीवन में काम आने वाला होगा।

2. क्रिया द्वारा सीखना – गाँधीजी ने कहा है कि बिना 'क्रिया' के सीखना सम्भव नहीं। इसीलिये प्राथमिक स्तर पर उन्होंने 'हस्तकला' प्रशिक्षण को शिक्षण में स्थान दिया है।

3. सीखने की प्रक्रियाओं में समन्वय – गाँधीजी ने सीखने की प्रक्रिया में विभिन्न विषयों में समन्वय स्थापित करने पर बल दिया और इसीलिये 'हस्तकला' के अन्य सैद्धान्तिक विषयों से भी सह–सम्बन्ध स्थापित कर गठन कराना चाहिये।

4.शारीरिक अंगों का विवेकपूर्ण प्रयोग – बालक की माँसपेशियों के प्रशिक्षण के लिये शरीर के प्रत्येक अंग को प्रशिक्षण देना आवश्यक है। गाँधीजी के अनुसार, मस्तिष्क को सच्ची शिक्षा शारीरिक अंगों–हाथ, आँख, नाक एवंनकान आदि के उचित अभ्यास और प्रशिक्षण से प्रदान की जा सकती है। मस्तिष्क के विकास का यह एक विवेकपूर्ण तरीका है।

5. मनसा, वाचा, कर्मणा में सम्बन्ध स्थापित कर सिखाना – गाँधीजी के अनुसार भारतीय शिक्षण पद्धति के श्रवण, मनन और स्मरण इन तीनों का पाठन, विचार (चिन्तन) तथा क्रिया द्वारा सीखने में प्रयोग किया जा सकता है। ज्ञान के लिये उपरोक्त तीनों संक्रियाओं का पारस्परिक सम्बन्ध भी आवश्यक है।

अरविन्द घोष के शैक्षिक विचार – अरविन्द घोष एक महान शिक्षाविद एवं दार्शनिक थे। वे अपने शैक्षिक विचारों को अपनी पुस्तक "नेशनल सिस्टम ऑफ एजुकेशन" तथा "आन एजुकेशन" में व्यक्त किए हैं। उपनिषद् एवं वेदान्त के मौलिक सार तत्व उनके जीवन दर्शन के आधार थे। उन्होंने आध्यात्मिक अभ्यास, योग तथा ब्रह्मचर्य को अपने जीवन में विशेष महत्व दिया। एक आदर्शवादी के रूप में अरविन्द घोष का शिक्षा दर्शन आध्यात्मिक तपस्या, योग तथा ब्रह्मचर्य के अभ्यास पर आधारित है। उन्होंने माना कि यदि कोई व्यक्ति शिक्षा के सभी तीनों पक्षों को प्राप्त करता है, वह निश्चित रूप से स्वयं की पूर्ण विस्तार तक विकसित कर सकती है।

अरविन्द घोष के लिए, "वास्तविक शिक्षा वह है जो बच्चे को स्वतंत्र एवं सृजनशील वातावरण प्रदान करती है तथा उसकी रूचियों, सृजनशीलता, मानसिक, नैतिक तथा सौन्दर्य बोध का विकास करते हुए अंततः उसके आध्यात्मिक शक्ति के विकास को अग्रसरित करती है।

अरविन्द घोष के शैक्षिक विचार – अरविन्द घोष के अनुसार, शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिएः शुद्धता के साथ बच्चे का शारीरिक तथा मानसिक विकास, इन्द्रियों का विकास, नैतिकता का विकास, अंतःकरण का विकास, आध्यात्मिकता का विकास। उनके मूलभूत शैक्षिक विचारों को निम्नलिखित पंक्तियों से बताया जा सकता है :

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

1.शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिए।

2.बच्चे को सभी मानसिक योग्यताओं तथा मनोविज्ञान के अनुरूप प्रदान की जानी चाहिए।

3.शिक्षा का लक्ष्य अध्यात्म की प्राप्ति होनी चाहिए।

4.शिक्षा के माध्यम से इन्द्रियों का प्रशिक्षण तथा अंतःकरण का विकास होना चाहिए।

5.शिक्षा का मूलभूत आधार ब्रह्मचर्य होना चाहिए।

6.बच्चे को संपूर्ण मानव बनाने के लिए शिक्षा को उसके सभी आनुवंशिक शक्तियों को विकसित करना चाहिए।

पाठ्यचर्या तथा शिक्षण विधियाँ – पाठ्यचर्या में समाविष्ट विषय बच्चे की रुचि के अनुरूप होने चाहिए। उनके अनुसार पाठ्यचर्या को बच्चे के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास में सहायक होना चाहिए। उन्होंने सुझाया कि पाठ्यचर्या रूचिकर होनी चाहिए तथा इसे बच्चे को अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का जीवन परिचय

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म देवेन्द्रनाथ टैगोर और शारदा देवी की सन्तान के रूप में 7 मई 1861 को कोलकाता के जोड़ासाँको ठाकुरबाड़ी में हुआ। उनकी विद्यालय की पढ़ाई प्रतिष्ठित सेंट जेवियर स्कूल में हुई। उन्होंने बैरिस्टर बनने की चाहत में 1878 में इंग्लैण्ड के ब्रिजटोन में पब्लिक स्कूल में नाम दर्ज कराया। उन्होंने लन्दन विश्वविद्यालय में कानून का अध्ययन किया लेकिन 1890 में बिना डिग्री प्राप्त किये ही स्वदेश वापस आ गये। सन् 1883 में मृणालिनी देवी के साथ उनका विवाह हुआ। उनकी प्रमुख कृतियों में गीतांजलि,गीताली, गीतिमाल्य, कथा ओ कहानी, शिशु, शिशु भोलानाथ,कणिका, क्षणिका, खेया आदि प्रमुख है। टैगोर बचपन से ही बहुत प्रतिभाशाली थे। वे एक महान कवि, कहानीकार,गीतकार, संगीतकार, नाटककार, निबन्धकार तथा चित्रकार थे। उन्हें कला की कोई औपचारिक शिक्षा नहीं मिली थी। उसके बाद उन्होंने घर का दायित्व सम्भाल लिया।

उन्हें प्रकृति से बहुत लगाव था। उनका मानना था कि विद्यार्थियों को प्राकृतिक वातावरण में ही पढ़ाई करनी चाहिये। वे गुरुदेव के नाम से प्रसिद्ध हो गये। वे अकेले ऐसे कवि हैं जिनकी लिखी हुई दो रचनाएँ भारत और बांग्लादेश का राष्ट्रगान बनी। उनकी अधिकतर रचनाएँ आम आदमी पर केन्द्रित हैं। उनकी रचनाओं में सरलता, अनूठापन एवं दिव्यता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति में नई जान फूंकने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। उन्होंने अपनी पहली कविता 8 वर्ष की छोटी आयु में ही लिख दी थी। जब उनकी रचनाओं का अंग्रेजी अनुवाद होने लगा तब सम्पूर्ण विश्व को उनकी प्रतिभा के बारे में पता चला। इस महान रचनाकार ने 2000 से भी अधिक गीत लिखे। 1919 में हुए जलियाँवाला बाग हत्याकांड की टैगोर ने निन्दा की और इसके विरोध में उन्होंने अपना 'सर' का खिताब लौटा दिया। इस पर अंग्रेजी समाचार पत्रों ने टैगोर की बहुत निन्दा की। टैगोर की कविताओं को सबसे पहले विलियम रोथेनस्टाइन ने पढ़ा और ये रचनाएँ उन्हें इतनी अच्छी लगी कि उन्होंने पश्चिमी जगत के लेखकों, कवियों, चित्रकारों और चिन्तकों से टैगोर का परिचय कराया। काबुली वाला, मास्टर साहब और पोस्टमास्टर ये उनकी कुछ प्रमुख प्रसिद्ध कहानियाँ हैं। उनकी रचनाओं के पात्र रचना समाप्त होने तक असाधारण बन जाते हैं। उन्होंने अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में चित्र बनाने प्रारम्भ किये और उनकी कलाकृति भी उत्कृष्ठ थी।

1902 से 1907 के मध्य में उनकी पत्नी और 2 सन्तानों की मृत्यु का दर्द इसके बाद की रचनाओं में साफ झलकता है। टैगोर और महात्मा गाँधी के बीच में सदैव वैचारिक मतभेद रहे, इसके बाद भी वे दोनों एक–दूसरे का बहुत सम्मान करते थे। उन्होंने जीवन की प्रत्येक सच्चाई को सहजता के साथ स्वीकार किया और जीवन के अन्तिम समय तक सक्रिय रहे। 7 अगस्त 1941 को यह महान व्यक्तित्व इस संसार को छोड़कर चला गया। रवीन्द्रनाथ टैगोर शिक्षाशास्त्री के रूप में अपने स्वयं के प्रयास से प्रकट हुए। अपने इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये उन्होंने विश्वभारती की स्थापना की। यह उनके जीवन में अनुभव का आवश्यक परिणाम था। वे भारतीय आदर्शों के समर्थक थे, पाश्चात्य में विचारों के प्रति भी वे जागृत थे। उन्होंने रूसो की प्रकृतिवादी विचारधारा से फ्रॉबेल की किण्डरगार्टन पद्धति तथा जॉन डीवी की शैक्षिक विचारधाराओं में विभिन्न विशेषताओं को देखा किन्तु उनके विचारों को प्रत्येक स्थिति में सत्य नहीं माना, न ही पाश्चात्य शैक्षिक विचारों का अन्धानुकरण किया और न ही अपने विद्यालय को किसी पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली पर आधारित किया। उन्होंने अपने शिक्षा सिद्धान्तों की स्वयं खोज की थी। उनके शैक्षिक विचार उनके स्वानुभव पर आधारित थे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर का शिक्षा दर्शन

टैगोर के शिक्षा दर्शन के सिद्धान्त – रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षा दर्शन के आधारभूत सिद्धान्त या आवश्यक तत्त्व निम्नलिखित हैं –

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

(1) छात्रों में संगीत, अभिनय एवं चित्रकला की योग्यताओं का विकास किया जाना चाहिये।

(2) छात्रों को भारतीय विचारधारा और भारतीय समाज की पृष्ठभूमि का स्पष्ट ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिये।

(3) छात्रों को उत्तम मानसिक भोजन दिया जाना चाहिये, जिससे उनका विकास विचारों के पर्यावरण में हो।

(4) छात्रों को नगर की गन्दगी और अनैतिकता से दूर प्रकृति के घनिष्ठ सम्पर्क में रखकर शिक्षा दी जानी चाहिये।

(5) शिक्षा राष्ट्रीय होनी चाहिये और उसे भारत के अतीत एवं भविष्य का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

(6) शिक्षा का समुदाय के जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिये। उसे सजीव और गतिशील होने के लिये व्यापक दृष्टिकोण रखना चाहिये।

(7) शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होना चाहिये क्योंकि विदेशी भाषा द्वारा अनन्त मूल्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता।

(8) शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिये–व्यक्ति में सभी जन्मजात शक्तियों एवं उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण और सामंजस्यपूर्ण विकास करना।

(9) जनसाधारण को शिक्षा देने के लिये देशी प्राथमिक विद्यालयों को पुनः जीवित किया जाना चाहिये।

टैगोर के अनुसार शिक्षा का अर्थ – टैगोर (Tagore) ने शिक्षा शब्द का अर्थव्यापक अर्थ में लिया है, उन्होंने अपनी पुस्तक 'Personality' में लिखा है–"सर्वोत्तम शिक्षा वही है, जो सम्पूर्ण सृष्टि से हमारे जीवन का सामंजस्य स्थापित करती है।" सम्पूर्ण दृष्टि से टैगोर का अभिप्राय है संसार की चार और अचर, जड़ और चेतन, सजीव और निर्जीव सभी वस्तुएँ। इन वस्तुओं से हमारे जीवन का सामंजस्य तभी हो सकता है जब हमारी समस्त शक्तियाँ पूर्ण रूप से विकसित होकर, उच्चतम बिन्दु पर पहुँच जायें, इसी को टैगोर ने पूर्ण मनुष्यत्व कहा है।

शिक्षा का कार्य है, हमें इस स्थिति में पहुँचाना। इस दृष्टिकोण से टैगोर के अनुसार शिक्षा विकास की प्रक्रिया है। वह मनुष्य का शारीरिक, बौद्धिक, आर्थिक, व्यावसायिक, धार्मिक और आध्यात्मिक विकास करती है। अतः टैगोर के विचार में शिक्षा का रूप अत्यन्त व्यापक है। शिक्षा को व्यापक अर्थ के अन्तर्गत टैगोर ने शिक्षा के प्राचीन भारतीय आदर्श को ध्यान रखा है। वह आदर्श है–'सा विद्या या विमुक्तये'। इस आदर्श के अनुसार शिक्षा मनुष्य को आध्यात्मिक ज्ञान देकर उसे जीवन एवं मरण से मुक्ति प्रदान करती है। टैगोर ने शिक्षा के इस प्राचीन आदर्श को भी व्यापक रूप दिया है।कहना है कि शिक्षा न केवल आवागमन से वरन् आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और मानसिक दासता से भी मनुष्य को मुक्ति प्रदान करती है। अतः मनुष्य को शिक्षा द्वारा उस ज्ञान का संग्रहण करना चाहिये जो उसके पूर्वजों द्वारा संचित किया जा चुका है, यही सच्ची शिक्षा है। स्वयं टैगोर ने लिखा है–"सच्ची शिक्षा संग्रह किये गये लाभप्रद ज्ञान के प्रत्येक अंग के प्रयोग करने में, उस अंग के वास्तविक स्वरूप को जानने में और जीवन में जीवन के लिये सच्चे आश्रय का निर्माण करने में है।"

टैगोर के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य – यद्यपि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शिक्षा के उद्देश्यों की किसी भी स्थान पर पृथक् रूप से चर्चा नहीं की है तथापि उनकी लेखों में शिक्षा के उद्देश्य से सम्बन्धित उनके विचार प्राप्त होते हैं। उनके अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

1.शारीरिक विकास (Physical development) – टैगोर का विश्वास था कि स्वस्थ मन के लिये स्वस्थ शरीर परम आवश्यक है। अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि बालक का शारीरिक विकास करना शिक्षा का प्रथम उद्देश्य है। उनका कहना था कि शारीरिक विकास के लिये यदि आवश्यक हो तो अध्ययन को कुछ समय के लिये छोड़ देना चाहिये। शारीरिक विकास के लिये टैगोर ने पेड़ों पर चढ़ने, तालाबों में गोता लगाने, फलों को तोड़ने तथा प्रकृति माता के साथ अनेक प्रकार की शैतानियाँ करके खेलकूद तथा व्यायाम को आवश्यक बताते हुए पौष्टिक भोजन पर बल दिया।

2. मानसिक विकास (Mental development) – टैगोर के अनुसार प्रत्यक्ष रूप से जीवित व्यक्ति को जानने का प्रयास करना ही सच्ची शिक्षा है। इससे कुछ ज्ञान ही प्राप्त नहीं होता, अपितु जानने की शक्ति का विकास हो जाता है, जितना कक्षा में दिये जाने वाले व्याख्यानों द्वारा असम्भव है। उनका विश्वास था मानसिक विकास तब ही सम्भव है, जब वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में प्रत्यक्ष रूप से ज्ञान प्राप्त किया जाय। इसके लिये बालक को प्राकृतिक क्रियाएँ करने के लिये अधिक से अधिक अवसर मिलने चाहिये।

3. नैतिक एवं आध्यात्मिक विकास (Moral and spiritual development) – आदर्शवादी होने के नाते टैगोर ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा का उद्देश्य नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास होना चाहिये। अपने लेखो में उन्होंने अनेक नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की चर्चा की है और इसकी प्राप्ति के लिये आन्तरिक शक्ति, आत्मानुशासन, धैर्य एवं ज्ञान को परम आवश्यक बतलाया है।

4.समस्त शक्तियों का विकास (Development of all powers) – टैगोर यह मानते थे कि बालक के अन्दर सभी सुषुप्त शक्तियों का विकास करना शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है। टैगोर एक महान व्यक्तिवादी थे। अतः वे व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास को विशेष महत्व देते थे। वे व्यक्ति

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

को सम्मान तथा स्वतन्त्रता देने के पक्षपाती थे। इसके अतिरिक्त वे शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के मस्तिष्क को स्वतन्त्रता प्रदान करना मानते थे जिससे वे पुस्तकीय ज्ञान के अतिरिक्त अन्य साधनों द्वारा भी स्वतन्त्र रूप से अपना विकास कर सके।

5. सामाजिक विकास (Social development) – टैगोर व्यक्तिवादी होने के साथ–साथ समाजवादी भी थे। वे जितना महत्व व्यक्ति और उसके व्यक्तित्व के विकास को देते थे उतना ही महत्व वे समाज तथा सामाजिक सेवा को भी देते थे। वे व्यक्ति की आध्यात्मिकता पूर्णता के लिये उसका सामाजिक विकास आवश्यक मानते थे। अतः शिक्षा के द्वारा व्यक्ति को एक ऐसे सामाजिक बन्धन में बाँधना चाहते थे जिससे व्यक्ति सामाजिक विकास करने के लिये प्रयत्नशील रहे। अतः उन्होंने अपनी संस्था में सामूहिक कार्यों एवं जन सेवा को अधिक महत्व दिया।

6.राष्ट्रीयता का विकास (Development of nationalism) – रवीन्द्रनाथ टैगोर राष्ट्रवादी होने के नाते शिक्षा को राष्ट्रीय जागृति का उनम एवं सफल साधन मानते थे। उन्होंने अपने विचारों, लेखों एवं कविताओं के द्वारा व्यक्तियों को राष्ट्र प्रेम की ओर आकर्षित किया और उन्हें राष्ट्रीय एकता की अनुभूति करायी।

7.अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण का विकास (Development of international attitude) – रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य बालक में अन्तर्राष्ट्रीय समाज के प्रति चेतना उत्पन्न करना है। वे विश्व में एकता स्थापित करना चाहते थे। अतः वे चाहते थे कि शिक्षा के द्वारा बालक को अन्तर्राष्ट्रीय समाज के बन्धन में बाँधा जाय जिससे वह अन्तर्राष्ट्रीय समाज के विकास हेतु प्रयास करता रहे।

रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षक का स्थान – टैगोर की दृष्टि में शिक्षक ज्ञानी, संयमी एवं बच्चों के प्रति समर्पित होना चाहिये। शिक्षक के विषय में टैगोर के विचार पूर्णतया परम्परावादी थे। गुरुदेव के अनुसार शिक्षा बिना शिक्षक के सम्भव नहीं है। मनुष्य केवल मनुष्य से ही सीख सकता है। अतः शिक्षा व्यवस्था का मुख्य आधार शिक्षक हो है। टैगोर ने शिक्षण विधि की तुलना में शिक्षक को बहुत अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करते हुए लिखा है, "शिक्षा केवल शिक्षक के द्वारा और शिक्षण विधि द्वारा कदापि नहीं दी जा सकती। अतः शिक्षक को पूर्वाग्रही, संकीर्ण, असहिष्णु, आधीन और अहंकारी नहीं होना चाहिये।"

स्वामी विवेकानंद का जीवन परिचय

स्वामी विवेकानंद का जन्म सन् 1863 ई. में कलकाता में हुआ था। उनका पहले का नाम नरेंद्र नाथ दत्त था। वे बचपन से ही प्रतिभाशाली छात्र थे। उनके विषय में उनके प्रधानाचार्य **हैस्ट्री** ने कहे थे '' मैंने विश्व के विभिन्न देशों की यात्राएं की है परंतु किशोरावस्था में ही इसके समान योग्य एवं महान क्षमताओं वाला युवक मुझे जर्मन विश्वविद्यालय में नहीं मिला।''

स्वामी जी मिस्टर हैस्ट्री द्वारा दी गई प्रेरणा पर दक्षिणेश्वर पहुंचे। उसी मंदिर में उन्हें रामकृष्ण परमहंस से मुलाकात हुई। स्वामी जी ने उनसे साक्षात्कार किया। यह साक्षात्कार उनके जीवन की अपूर्व घटना थी। स्वामी जी को रामकृष्ण परमहंस के उत्तरो से संतोष मिली। नरेंद्र नाथ जब दूसरी बार अपने गुरु के दर्शन करने के लिए गए तो उन्हें दिव्य शक्ति का अनुभव हुआ। रामकृष्ण परमहंस जी के संपर्क में नरेंद्र जी 6 वर्ष रहे तथा आध्यात्मिक ज्ञान प्राप्त करके नरेंद्र से स्वामी विवेकानंद पर गए। सन 1886 ईस्वी में स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी का निधन हो गया। स्वामी विवेकानंद ने अपने गुरु की स्मृति में रामकृष्ण मिशन स्थापित किया तथा उनके द्वारा दिए गए वेदांत के उद्देश्यों को एशिया यूरोप तथा मेरी का की जनता में आजीवन प्रचार किया। संक्षेप में स्वामी जी ने पश्चात्म देशों में भावात्मक तथा भारत में क्रियात्मक वेदांत का प्रचार करके हिंदू धर्म की महानता को फैलाया।

उन्होंने अपने अंतिम दिनों में विश्व बंधुत्व के लिए भी प्रचार किया। सन् 1902 विषय में स्वामी जी का देहांत हो गया।

स्वामी विवेकानंद का शिक्षा दर्शन – जिस प्रकार स्वामी जी का जीवन दर्शन विस्तृत और यथार्थवादी है उसी प्रकार उनका शिक्षा दर्शन है वे वर्तमान शिक्षा प्रणाली की आलोचना करते थे और तत्कालिक शिक्षा प्रबल समर्थक थे। उनका मानना था कि शिक्षा मनुष्य को जीवन संग्राम के लिए कटिबद्ध नहीं करती बल्कि उसे शक्तिहीन बनाती है। स्वयं उन्होंने अपने शिक्षा दर्शन में कहें ''हमें ऐसे शिक्षा की आवश्यकता है जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है और मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है।''

विवेकानंद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य

१. **पुर्णत्व को प्राप्त करने का उद्देश्य** – स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का प्रथम उद्देश्य अंतर्निहित पूर्णता को प्राप्त करना है। उनके अनुसार लौकिक तथा आध्यात्मिक सभी ज्ञान मनुष्य के मन में पहले से ही विद्यमान होता है।

२. **शारीरिक एवं मानसिक विकास का उद्देश्य** – विवेकानंद जी के अनुसार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य बाला का शारीरिक एवं मानसिक विकास करना है। उन्होंने शारीरिक उद्देश्य पर इसलिए बल दिया जिससे आज के बालक भविष्य में निर्भीक एवं बलवान योद्धा के रूप में गीता का

अध्ययन करके देश की उन्नति कर सकें। मानसिक उद्देश्य पर बल देते हुए उन्होंने बताया कि हमें ऐसे शिक्षा की आवश्यकता है जिसे प्राप्त करके मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

३. **नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास का उद्देश्य** – स्वामी जी का विश्वास था कि किसी देश के महानता केवल उनके संसदीय कामों से नहीं होती अपितु उसके नागरिकों की महानता से होती है। पर नागरिकों को महान बनाने के लिए उनका नैतिक तथा आध्यात्मिक विकास परम आवश्यक है।

४. **चरित्र निर्माण का उद्देश्य** – विवेकानंद जी ने चरित्र निर्माण को शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य माना। इसके लिए उन्होंने ब्रह्मचार्य पालन पर बल दिया और बताया कि ब्रह्मचार्य के द्वारा मनुष्य मैं बौद्धिक तथा आध्यात्मिक शक्तियां विकसित होगी तथा वह मन वचन और कर्म से पवित्र बन जाएंगे।

५. **आत्मविश्वास, श्रद्धा एवं आत्मत्याग की भावना** – स्वामी जी ने आजीवन इस बात पर बल दिया कि अपने ऊपर विश्वास रखना, श्रद्धा तथा आत्मत्याग की भावना को विकसित करना शिक्षा का महत्व पूर्ण उद्देश्य है। उन्होंने लिखा उठो जागो और उस समय तक बढ़ते रहो जब तक की चरम उद्देश्य की प्राप्ति ना हो जाए।

६. **धार्मिक विकास का उद्देश्य** – स्वामी जी ने धार्मिक विकास को शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य माना। वे चाहते थे कि प्रत्येक व्यक्ति उस सत्य अथवा धर्म को मालूम कर सके जो उनके अंदर दिया हुआ है। उसके लिए उन्होंने मन तथा हृदय के प्रशिक्षण पर बल दिया। और बताया कि शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसे प्राप्त करके बालक अपने जीवन को पवित्र बना सकें।

Unit :– 2.5 Teacher and the learner: ancient ideals of a teacher, teacher in modern education; roles,functions and traits of a teacher -शिक्षक और शिक्षार्थी: एक शिक्षक के प्राचीन आदर्श, आधुनिक शिक्षा में शिक्षक; भूमिकाएं,एक शिक्षक के कार्य और लक्षण – तकनीकी सुधार ने भारत में आर्थिक विकास को बढ़ावा दिया है। भारत के आर्थिक विकास में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका है। अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में युवा जनशक्ति अधिक है। उचित शिक्षा युवाओं को भविष्य के लिए तैयार करने और कुशल व्यक्तियों को प्रदान करके आर्थिक विकास को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगी जिससे औद्योगिक विकास को भी बढ़ावा मिलेगा। शिक्षा के आधुनिक युग में, प्रत्येक संस्थान या विश्वविद्यालय अपनी शिक्षण पद्धतियों का उपयोग करके नई शिक्षण विधियों को अपना रहा है। भारतीय शिक्षा दुनिया की सबसे बड़ी और प्रसिद्ध शिक्षा प्रणाली है। प्राचीन शिक्षा के दौरान, तक्षशिला, नालंदा, वल्लभी, आदि जैसे 5 बड़े प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे, जो छात्रों के सर्वांगीण विकास पर ध्यान केंद्रित करते थे और मध्ययुगीन काल में 2 संस्थान मदरसा और मकतब मौजूद थे जो ज्यादातर निर्माण पर ध्यान केंद्रित करते थे। छात्र धार्मिक और भविष्य के नेता। आधुनिक शिक्षा में, IIT और IIM जैसे प्रसिद्ध स्वायत्त संस्थान हैं जो दुनिया भर में प्रसिद्ध हैं।

प्राचीन शिक्षा के दौरान, छात्र अपने माता–पिता से दूर रहते हैं, उनकी शिक्षा में शारीरिक शिक्षा, मानसिक शिक्षा, राजनीति, अर्थशास्त्र आदि जैसे विषय शामिल होते हैं। उन्हें इस तरह से आकार दिया गया था कि वे किसी भी स्थिति में रह सकते हैं, यह देखते हुए कि स्थिति कितनी कठिन होगी? मध्यकालीन शिक्षा भी प्राचीन शिक्षा के समान प्रोटोकॉल का पालन करती थी, इसके बावजूद कि उनकी शिक्षा ज्यादातर धर्म पर केंद्रित थी। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आईआईटी) और भारतीय प्रबंधन संस्थान (आईआईएम) जैसे बड़े संस्थानों के आज के आधुनिक युग में, छात्रों के जीवन स्तर, पाठ्यक्रम, सर्वांगीण विकास की तरह सब कुछ बदल गया है। छात्र का सिद्धांत उद्देश्य सिर्फ अपने लक्ष्य को प्राप्त करना और सफल होना रहा है। केवल IIT, IIM और कुछ अन्य निजी और सहायता प्राप्त विश्वविद्यालयों जैसे बड़े संस्थानों ने सीखने के आधुनिक तरीकों को अपनाया है। हर संस्थान में पाठ्यक्रम, शिक्षण विधियों और छात्रों के जीवन स्तर में अंतर होता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली का पाठ्यक्रम उद्योग–उन्मुख नहीं है और न ही नए आने वाले रुझानों के अनुसार। शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ज्यादातर सैद्धांतिक है और व्यावहारिक रूप से लागू नहीं किया गया है।

इस पत्र का मुख्य उद्देश्य यह बताना है कि प्राचीन और मध्यकाल से हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में किन–किन चीजों को अपनाने की जरूरत है और साथ ही इससे जुड़ी कुछ नई प्रवृत्तियां भी। पेपर को मुख्य रूप से तीन खंडों प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक शिक्षा प्रणाली में वर्गीकृत किया गया है, जिसमें उप–वर्ग जैसे पाठ्यक्रम, सीखने की विधि, शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षा की विशेषताएं, शैक्षणिक संस्थान उच्च शिक्षण संस्थान, विशेष के फायदे और नुकसान शामिल हैं।

प्राचीन शिक्षा (Ancient education) – भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति में हमें अनौपचारिक तथा औपचारिक दोनों प्रकार के शैक्षणिक केन्द्रों का उल्लेख प्राप्त होता है। औपचारिक शिक्षा मन्दिर, आश्रमों और गुरुकुलों के माध्यम से दी जाती थी। ये ही उच्च शिक्षा के केन्द्र भी थे। जबकि परिवार, पुरोहित, पण्डित, सन्यासी और त्यौहार प्रसंग आदि के माध्यम से अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त होती थी। विभिन्न धर्मसूत्रों में इस बात का

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

उल्लेख है कि माता ही बच्चे की श्रेष्ठ गुरु है। कुछ विद्वानों ने पिता को बच्चे के शिक्षक के रुप में स्वीकार किया है। जैसे–जैसे सामाजिक विकास हुआ वैसे–वैसे शैक्षणिक संस्थाएँ स्थापित होने लगी। वैदिक काल में परिषद, शाखा और चरण जैसे संघों का स्थापन हो गया था, लेकिन व्यवस्थित शिक्षण संस्थाएँ सार्वजनिक स्तर पर बौद्धों द्वारा प्रारम्भ की गई थी।

गुरुकुलों की स्थापना प्रायः वनों, उपवनों तथा ग्रामों या नगरों में की जाती थी। वनों में गुरुकुल बहुत कम होते थे। अधिकतर दार्शनिक आचार्य निर्जन वनों में निवास, अध्ययन तथा चिन्तन पसन्द करते थे। वाल्मीकि, सन्दीपनि, कण्व आदि ऋषियों के आश्रम वनों में ही स्थित थे और इनके यहाँ दर्शन शास्त्रों के साथ–साथ व्याकरण, ज्योतिष तथा नागरिक शास्त्र भी पढ़ाये जाते थे। अधिकांश गुरुकुल गांवों या नगरों के समीप किसी वाग अथवा वाटिला में बनाये जाते थे। जिससे उन्हें एकान्त एवं पवित्र वातावरण प्राप्त हो सके। इससे दो लाभ थे; एक तो गृहस्थ आचार्यों को सामग्री एकत्रित करने में सुविधा थी, दूसरे ब्रह्मचारियों को भिक्षाटन में अधिक भटकना नहीं पड़ता था। मनु के अनुसार ब्रह्मचारों को गुरु के कुल में, अपनी जाति वालों में तथा कुल बान्धवों के यहाँ से भिक्षा याचना नहीं करनी चाहिए, यदि भिक्षा योग्य दूसरा घर नहीं मिले, तो पूर्व–पूर्व गृहों का त्याग करके भिक्षा याचना करनी चाहिये। इससे स्पष्ट होता है कि गुरुकुल गांवों के सन्निकट ही होते थे। स्वजातियों से भिक्षा याचना करने में उनके पक्षपात तथा ब्रह्मचारी के गृह की ओर आकर्षण का भय भी रहता था अतएव स्वजातियों से भिक्षा–याचना का पूर्ण निषेध कर दिया गया था। बहुधा राजा तथा सामन्तों का प्रोत्साहन पाकर विद्वान् पण्डित उनकी सभाओं की ओर आकर्षित होते थे और अधिकतर उनकी राजधानी में ही बस जाते थे, जिससे वे नगर शिक्षा के केन्द्र बन जाते थे। इनमें तक्षशिला, पाटलिपुत्र, कान्यकुब्ज, मिथिला, धारा, तंजोर आदि प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार तीर्थ स्थानों की ओर भी विद्वान् आकृष्ट होते थे। फलतः काशी, कर्नाटक, नासिक आदि शिक्षा के प्रसिद्ध केन्द्र बन गये।

कभी–कभी राजा भी अनेक विद्वानों को आमंत्रित करके दान में भूमि आदि देकर तथा जीविका निश्चित करके उन्हें बसा लेते थे। उनके बसने से वहाँ एक नया गाँव बन जाता था। इन गाँवों को अग्रहार' कहते थे। इसके अतिरिक्त विभिन्न हिन्दू सम्प्रदायों एवं मठों के आचार्यों के प्रभाव से ईसा की दूसरी शताब्दी के लगभग मठ शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गये। इनमें शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य आदि के मठ प्रसिद्ध हैं। सार्वजनिक शिक्षण संस्थाएँ सर्वप्रथम बौद्ध विहारों में स्थापित हुई थीं। भगवान बुद्ध ने उपासकों की शिक्षा–दीक्षा पर अत्यधिक बल दिया। इस संस्थाओं में धार्मिक ग्रन्थों का अध्यापन एवं आध्यात्मिक अभ्यास कराया जाता था। अशोक (300 ई॰ पू॰) ने बौद्ध विहारों की विशेष उन्नति करायी। कुछ समय पश्चात् ये विद्या के महान केन्द्र बन गये। ये वस्तुतः गुरुकुलों के ही समान थे। किन्तु इनमें गुरु किसी एक कुल का प्रतिनिधि न होकर सारे विहार का ही प्रधान होता था। ये धर्म प्रचार की दृष्टि से जनसाधारण के लिए भी सुलभ थे। इनमें नालन्दा विश्वविद्यालय (450 ई॰), वल्लभी (700 ई.), विक्रमशिला (800 ई॰) प्रमुख शिक्षण संस्थाएँ थीं। इन संस्थाओं का अनुसरण करके हिन्दुओं ने भी मन्दिरों में विद्यालय खोले जो आगे चल कर मठों के रूप में परिवर्तित हो गये।

सीखने के तरीके (Methods of learning) :– उस समय के शिक्षक अपने छात्रों पर विशेष ध्यान देते थे और उन्हें उनके ज्ञान और कौशल स्तर के अनुसार पढ़ाते थे। शिक्षण मूल रूप से मौखिक और वाद–विवाद के माध्यम से होता था, और विभिन्न विधियाँ इस प्रकार थीं –

- उस समय किताबें नहीं थीं, इसलिए छात्रों को कक्षा में पढ़ाई जाने वाली सभी चीजों को सीखने और याद रखने की आदत थी, और शिक्षकों ने उन्हें याद करने में भी मदद की।
- छात्र अपने शिक्षकों द्वारा सिखाई गई अवधारणाओं में गहराई से उतरते थे और इसे सीखने के लिए नई विधियों का पता लगाते थे।
- सुनना, चिंतन और एकाग्र चिंतन सीखने के तरीके की खोज के कुछ नए तरीके थे।
- शिक्षकों ने छात्रों को पढ़ाने के लिए कहानी कहने के तरीकों का इस्तेमाल किया।
- छात्र शिक्षकों द्वारा पढ़ाए गए विषयों के बारे में प्रश्न पूछते थे और इन विषयों पर चर्चा की जाती थी और फिर छात्रों को उत्तर दिए जाते थे।
- उस समय की शिक्षा मुख्य रूप से कक्षा में पढ़ाए जाने वाले विषयों के व्यावहारिक ज्ञान पर केंद्रित थी।

लाभ (Advantages) :–

- प्रणाली छात्रों के सर्वांगीण विकास पर केंद्रित है।
- सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा व्यवहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया गया।
- छात्र न केवल रैंक लाने में शामिल थे, बल्कि उनका मुख्य ध्यान ज्ञान पर था।
- कक्षाओं का निर्माण – जंगलों में किया गया था जो छात्रों को एक सुखद अध्ययन वातावरण प्रदान करते हैं।
- सरकार ने पाठ्यक्रम के निर्माण में हस्तक्षेप नहीं किया, उस समय के राजाओं ने शिक्षा के विकास में मदद की।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

नुकसान (Disadvantages) :–

- महिलाओं को गुरुकुलों में प्रवेश नहीं दिया जाता था।
- जातिगत भेदभाव था क्योंकि केवल क्षत्रिय को अनुमति दी गई थी, एकलव्य को गुरुकुल में प्रवेश नहीं दिया गया था।

आधुनिक शिक्षा (Modern education) :– मध्य युग के मध्य में, अंग्रेजों ने भारत पर आक्रमण किया और उस पर कब्जा करना शुरू कर दिया। आधुनिक शिक्षा ब्रिटिश साम्राज्य के दौरान शुरू की गई थी। 1830 के दशक में लॉर्ड थॉमस बबिंगटन मैकाले ने अंग्रेजी भाषा की शुरुआत की। विषय और पाठ्यक्रम कुछ हद तक सीमित थे, अंग्रेजों की आधुनिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रसार करना था। जैसे–जैसे समय बीतता गया शिक्षा का विकास होना शुरू हुआ और आधुनिक युग में प्रवेश किया जो कि इक्कीसवीं सदी में है, विज्ञान, प्रौद्योगिकी और नवाचारों का युग। और शिक्षा की मांग और आवश्यकता अभी भी वैसी ही बनी हुई है जैसी प्राचीन और मध्यकाल में थी। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के आधुनिक युग में औद्योगिक क्षेत्र दिन–ब–दिन बढ़ता जा रहा है। जैसे–जैसे मांग बढ़ती है हमारे शिक्षा क्षेत्र को भी बदलने और उस माहौल के अनुकूल होने की जरूरत है।

आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रों में समानता, धर्मनिरपेक्षता, सभी के लिए शिक्षा और पर्यावरण संरक्षण आदि जैसे मूल्यों को विकसित करना था। हमारे देश की संस्कृति के साथ–साथ लोगों को समझने के लिए, प्रत्येक छात्र को कम से कम न्यूनतम स्तर प्रदान किया जाना चाहिए। शिक्षा और उन लोगों को शिक्षा प्रदान करना जो इसे वहन नहीं कर सकते, छात्रों को लगातार बढ़ती मांगों के साथ तैयार करने के लिए।

सीखने के तरीके (Methods of learning) :–

- छात्र ज्यादातर यूट्यूब जैसे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म के माध्यम से अवधारणाओं को सीखते हैं।
- छात्र ऑनलाइन सीखते समय शिक्षक की तरफ से दिए गए नोट्स का संदर्भ लेते हैं।
- कक्षा के घंटों के दौरान चर्चा, वाद–विवाद आदि के माध्यम से शंकाओं का समाधान किया जाता है।

लाभ (Advantages) :–

- भारत के रोजगार को बढ़ाने के लिए कई कार्यक्रम और मिशन शुरू किए गए हैं।
- अच्छे बुनियादी ढांचे और पर्यावरण के साथ शीर्ष श्रेणी के विश्वविद्यालय और कॉलेज

नुकसान (Disadvantages) :–

- शिक्षा, प्रबंधन और पाठ्यक्रम में सरकार का हस्तक्षेप।
- सरकारी स्कूलों और कॉलेजों में गुणवत्तापूर्ण शिक्षण के साथ–साथ पर्यावरण का भी अभाव है।
- निजी संस्थानों के स्कूलों और कॉलेजों की फीस में वृद्धि।
- व्यावहारिक ज्ञान उन्मुखीकरण का अभाव।

आधुनिक युग में उद्योग और प्रौद्योगिकी दिन–ब–दिन बढ़ते जा रहे हैं। हर उद्योग क्षेत्र एक ऐसे व्यक्ति की तलाश में है जो उनके उद्योग के लिए सबसे उपयुक्त हो। औद्योगिक क्षेत्रों की लगातार बढ़ती मांग के साथ, हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को भी उन्नत करने की आवश्यकता है। विश्वविद्यालयों में छात्र सिर्फ एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने के लिए सीख रहे हैं कि पहले आएं, कोई व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। उन पर काम और पढ़ाई का बहुत अधिक दबाव है और इस वजह से छात्र आत्महत्या कर रहे हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली को प्राचीन और मध्यकालीन शिक्षा प्रणाली से व्यावहारिक ज्ञान के कार्यान्वयन, छात्र–शिक्षक संबंध, उस युग में छात्र जीवन जीने के तरीके, शिक्षा के प्रति राजाओं का योगदान, छात्रों पर कोई जोर नहीं दिया गया और बहुत कुछ सीखने की जरूरत है। अधिक उद्योगों और वाणिज्यिक क्षेत्रों का भविष्य बहुत कठिन और हमेशा मांग वाला होगा, इसलिए हमारी सरकार को ऐसी शिक्षा प्रणाली प्रदान करनी होगी जो छात्रों में सर्वांगीण विकास लाकर उन्हें भविष्य के लिए तैयार करे और उन्हें किसी भी गंभीर स्थिति में रहना सिखाए।

Unit :– 3.1 Different agencies of education: Formal, Informal and Non – formal शिक्षा की विभिन्न एजेंसियां: औपचारिक, अनौपचारिक और गैर अनौपचारिक – शिक्षा कक्षा की चार दीवारों के भीतर जो कुछ भी होता है, उससे कहीं आगे जाती है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

एक बच्चा स्कूल के बाहर अपने अनुभवों के साथ–साथ इन कारकों के आधार पर अपने अनुभवों से शिक्षा प्राप्त करता है। शिक्षा के तीन मुख्य प्रकार हैं, औपचारिक अनौपचारिक और गैर–औपचारिक। इनमें से प्रत्येक प्रकार की चर्चा नीचे की गई है।

औपचारिक शिक्षा (Formal Education) :– औपचारिक शिक्षा वह शिक्षा है जो एक निश्चित स्थान पर, निश्चित लोगों के द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम तथा निश्चित समय में संपन्न की जाती है उसे औपचारिक शिक्षा कहते हैं

औपचारिक शिक्षा के संसाधन – औपचारिक शिक्षा का मुख्य स्थान विद्यालय परिसर है। पुस्तकालय, चित्र भवन, यह सभी की औपचारिक शिक्षा के साधन है।

औपचारिक शिक्षा के विशेषताएं – औपचारिक शिक्षा कक्षा–शिक्षण प्रणाली है।

- औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक और विद्यार्थी कक्षा कक्ष में आमने सामने होते हैं।
- औपचारिक शिक्षा से प्राप्त शिक्षा का एक उद्देश्य निश्चित होता है।
- औपचारिक शिक्षा का एक समय निश्चित होता है।
- इस प्रकार के शिक्षा का पाठ्यक्रम भी निश्चित होता है।
- औपचारिक शिक्षा एक निश्चित जगह पर दी जाती हैं जैसे– विद्यालय।
- औपचारिक शिक्षा एक निश्चित लोगों के द्वारा दी जाती है जैसे– शिक्षक गण।

अनौपचारिक शिक्षा :– अनौपचारिक शिक्षा एक मुक्त शिक्षा प्रणाली है। इस प्रकार के शिक्षा प्रणाली में शिक्षक, परीक्षा, पाठ्यक्रम, समय तालिका एवं कोई निश्चित स्थान इत्यादि का महत्व नहीं होता है। बच्चे कहीं भी स्वतंत्र रूप से शिक्षा को ग्रहण कर सकते हैं। इस प्रकार के शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा कहलाता अनौपचारिक शिक्षा कहलाता है।

अनौपचारिक शिक्षा के उदाहरण एवं साधन

अनौपचारिक शिक्षा के साधन के अंतर्गत :– चिड़ियाघर, आस–पड़ोस, समाज तथा वातावरण, मित्र–मंडली, खेल, सामूहिक कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं।

अनौपचारिक शिक्षा का विशेषता एवं महत्व –

- अनौपचारिक शिक्षा एक मुक्त शिक्षा प्रणाली होती है।
- इस प्रकार के शिक्षा प्रणाली में किसी सिखाने वाले लोगों की जरूरत नहीं होती है बालक स्वयं अपने अनुभव से सीखता है।
- अनौपचारिक शिक्षा में सीखने का कोई समय निश्चित नहीं होता है।
- अनौपचारिक शिक्षा में शिक्षण के लिए कोई स्थान निर्धारित नहीं होता है।
- इस प्रकार के शिक्षा में बालक किसी भी चीज से सीख सकता है अर्थात, सिखाने वाला कोई भी हो सकता है।
- अनौपचारिक शिक्षा देने से पहले शिक्षा प्राप्ति का कोई उद्देश्य नहीं होता है।

निरौपचारिक शिक्षा – निरौपचारिक शिक्षा औपचारिक शिक्षा एवं अनौपचारिक शिक्षा के बीच की शिक्षा प्रणाली होती है। यह औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा दोनों से मिला–जुला होता है। निरौपचारिक शिक्षा में ना तो औपचारिक शिक्षा के समान विभिन्न प्रकार के बंधन होते हैं और ना ही अनौपचारिक शिक्षा की तरह पूरा खुलापन होता है। निरौपचारिक शिक्षा में पाठ्यक्रम, शिक्षा का उद्देश्य, शिक्षण विधि, शिक्षण समय इत्यादि निश्चित होते हैं जो औपचारिक शिक्षा के गुण भी हैं। लेकिन निरौपचारिक शिक्षा में स्थान निर्धारित नहीं होता है। शिक्षा देने वाले व्यक्ति निर्धारित नहीं रहते हैं, जो अनौपचारिक शिक्षा के गुण को दर्शाता है।

निरौपचारिक शिक्षा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है :– दूरस्थ शिक्षा प्रणाली। दूरस्थ शिक्षा में समय पाठ्यक्रम शिक्षण विधि इत्यादि निर्धारित रहते हैं लेकिन बालक कहीं भी रह कर किसी भी साधन के उपयोग करके पढ़ाई को पूरा कर सकता है यह जरूरी नहीं है कि वहां उसी कॉलेज या स्कूल के शिक्षकों से पढ़ाई करेगा। वह अपने घर पर रहकर या फिर किसी अन्य जगह पर भी रहकर पढ़ाई कर सकता है। और साथ ही वह किसी भी चीज से पढ़ाई को पूरा कर सकता है जैसे पूर्व विद्यार्थी के नोट्स या फिर ऑनलाइन पढ़ाई भी कर सकता है।

निरौपचारिक शिक्षा के गुण एवं विशेषताएं –

- निरौपचारिक शिक्षा का पाठ्यक्रम समय सारणी उद्देश्य इत्यादि निर्धारित होते हैं।
- निरौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने का स्थान किसी भी जगह हो सकता है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

- इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली में बालक किसी भी चीजों की सहायता से अपने शिक्षा को पूरा कर सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि निरौपचारिक शिक्षा प्रणाली औपचारिक शिक्षा प्रणाली एवं अनौपचारिक शिक्षा प्रणाली के बीच की शिक्षा प्रणाली हैं।

Unit :– 3.2 Modes of Education: Regular, Open, Distance & Online, Blended learning (शिक्षा के तरीके: नियमित, मुक्त, दूरस्थ और ऑनलाइन, मिश्रित शिक्षा)

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली (The Distance Education System) :– दूरस्थ शिक्षा, शिक्षा का वह स्वरूप है जिसमें शिक्षार्थी को दूर से शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है। यह शिक्षा विविध शैक्षिक पृष्ठभूमि वाले तथा विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में बिखरे शिक्षार्थियों को उनकी रुचि और सुविधा के अनुकूल ज्ञान, कौशल एवं अभिवृत्ति प्रदान करने का एक तरीका है। दूरस्थ शिक्षा औपचारिक शिक्षा के विपरीत वह व्यवस्था है जिसमें विद्यार्थी को किसी भी तरह से विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने नहीं आना पड़ता है बल्कि वे अपने–अपने स्थान पर रहते हुए आकाशवाणी, दूरदर्शन, टेपरिकार्डर आडियो एवं वीडियो कैसेट द्वारा ज्ञान प्राप्त करते रहते हैं।

दूरस्थ शिक्षा की परिभाषाएँ विभिन्न विद्वानों ने अपने ज्ञान, बोध और दृष्टिकोण से अलग–अलग ढंग से दूरस्थ शिक्षा को परिभाषित किया है। इसलिए ऐसी कोई परिभाषा नहीं बताई जा सकती है जिसमें सभी अर्थ और स्वगुणार्थ शामिल हों। यद्यपि यह कठिन है कि ऐसी परिभाषा हो जो सभी को मान्य हो फिर भी विभिन्न व्यक्तियों ने दूरस्थ शिक्षा की कुछ परिभाषाएं दी हैं। ये परिभाषाएं दूरस्थ शिक्षा के अर्थ व अवधारणा का व्यापक चित्रण करती हैं।

जैक्स ओक्स के अनुसार –"दूरस्थ शिक्षा कुछ निश्चित विशेषताओं के साथ उने का साधन है जो इसे किसी संस्था में सीखने के साधन से अलग करती है।"

मूरे (1972 और 1973) दूरस्थ शिक्षा के विशिष्ट लक्ष्यों के प्रति अधिक स्पष्ट है। उसके अनुसार दूरस्थ शिक्षा को शैक्षिक विधियों के एक कुल के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसमें शिक्षण व्यवहार अधिगम व्यवहार से पृथक संपादित होते हैं। उन व्यवहारों समेत जो मुखाभिमुख स्थिति में अध्येता की उपस्थिति में संपादित होते हैं तथा जिसमें अध्यापक और अध्येता के बीच छपी हुई सामग्री, इलैक्ट्रानिक्स यांत्रिक और अन्य साधनों से संप्रेषण होता रहता है। उन्होंने दूरस्थ शिक्षा के तीन लक्षण बताये।

- शिक्षण व्यवहार अधिगम व्यवहार से पृथक रहता है (उदाहरणार्थ, पत्राचार पाठ्यक्रम)
- मुखभिमुख शिक्षण और अधिगम प्रणाली का अंग है (उदाहरणार्थ, सम्पर्क कार्यक्रम),
- अधिगम और शिक्षण को प्रभावित करने के लिए इलैक्ट्रानिक्स और अन्य साधन प्रयोग में लाए जाते हैं (उदाहरणार्थ, श्रव्य और वीडियो कैसेट प्रयोग किए जाते हैं),

दूरस्थ शिक्षा में छात्रों को शिक्षकों के आमने–सामने बैठकर व्याख्यान सुनने का अवसर नहीं मिलता है अन्यथा इसमें खुले अधिगम को सम्प्रेषण माध्यमों या शिक्षा तकनीकी के द्वारा सीखने वालों तक पहुंचाया जाता है। दूरदर्शन की सहायता से भी शिक्षक छात्रों तक पहुंचकर शिक्षा प्रदान कर सकता है। वर्तमान में दूर शिक्षा उन लोगों की शैक्षिक आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता रखती है:

- जो परम्परागत शिक्षा में प्रवेश नहीं पा सके।
- जो शैक्षिक सुविधाओं से वंचित रहे।
- जो परम्परागत संस्थाओं में अपनी शिक्षा जारी नहीं रख सके।
- जो लोग बेरोजगार हैं और अपनी शिक्षा जारी नहीं रख सके।
- जो लोग बेरोजगार हैं और अपनी शिक्षा को घर पर जारी रखना चाहते हैं।
- व्यावसायिक प्रशिक्षण और अनुकूलन करने के इच्छुक अपनी सामान्य शिक्षा, व्यावसायिक या तकनीकी शिक्षा परम्परागत प्रणाली से बाहरी जारी रखना चाहते हैं।
- जो लोग भौतिक, आर्थिक, भौगोलिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हैं।
- जो लोग संगठित या असंगठित क्षेत्र में कार्यरत हैं।

यह समान रूप से व्यवसायी प्रशिक्षण और अन्य मानव संसाधनों की आवश्यकताओं और शिक्षा, उद्योग, स्वास्थ्य और कल्याण, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिक, कृषि आदि सभी क्षेत्रों की मांग को पूरा कर सकती है। आज अधिकतर देशों के कई दूरस्थ शिक्षा संस्थाओं द्वारा

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम चलाए जा रहे हैं और सभी आयु वर्ग के कई करोड़ विद्यार्थी लाभ उठा रहे है। दूरस्थ शिक्षा जीवन पर्यन्त विभिन्न शैक्षिक आवश्यकताओं और विभिन्न वर्ग के लोगों की आकांक्षाओं को पूरी करने की क्षमता रखती है और इस प्रकार अधिगमोमुख समाज बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है।

OPEN LEARNING – मुक्त अधिगम (ओपेन लर्निंग) – शिक्षा सम्बन्धी एक नवाचारी आन्दोलन एवं शिक्षा–सुधार है जो औपचारिक शिक्षा प्रणाली के अन्दर अधिगम (सीखने) के अवसरों में वृद्धि करता है या सीखने के अवसरों को औपचारिक शिक्षा पद्धति की सीमाओं के परे ले जाता है। यह आन्दोलन १९७० के दशक में सामने आया और आज शिक्षा व्यवस्था में इसने महत्वपूर्ण जगह बना ली है। मुक्त अधिगम में आने वाली प्रमुख चीजें ये हैं–

- कक्षा में शिक्षण
- अन्तःक्रियात्मक (इंटरैक्टिव) अधिगम
- कार्य से सम्बन्धित शिक्षा एवं प्रशिक्षण
- मुक्त शैक्षिक संसाधनों का विकास एवं उपयोग

अधिगम का लचीलापन –

- शिक्षा संस्थान में प्रवेश एवं छोड़ने में लचीलापन
- अध्यन के स्थान, समय, गति में लचीलापन
- अध्ययन की विधि में लचीलापन
- पाठ्यक्रम के चयन एवं मिश्रण में लचीलापन
- मूल्यांकन एवं पाठ्यक्रम समाप्ति का लचीलापन

जितना कम प्रतिबन्ध होते हैं, शिक्षा उतनी ही अधिक मुक्त कही जायेगी। मुक्त अधिगम का उद्देश्य सामाजिक और शैक्षिक असमताओं को मिटाना है तथा ऐसे अवसर प्रदान करना है जो पारम्परिक महाविद्यालयों/विश्वविद्यालयों द्वारा नहीं प्रदान किये जाते।

Unit :– 3.3 Regular School] Inclusive School and Special School, Home Education, Home&based Program, Family Community and Mass Media नियमित स्कूल, समावेशी स्कूल और विशेष स्कूल, गृह शिक्षा, घर–आधारित कार्यक्रम, पारिवारिक समुदाय और जनसम्पर्क – परिवार के बाद शिक्षण संस्थान समाजीकरण का कार्यभार संभालते हैं। कुछ समाजों (सरल गैर–साक्षर समाजों) में, समाजीकरण लगभग पूरी तरह से परिवार के भीतर होता है लेकिन अत्यधिक जटिल समाजों में बच्चों का सामाजिककरण भी शैक्षिक प्रणाली द्वारा किया जाता है। स्कूल न केवल पढ़ना, लिखना और अन्य बुनियादी कौशल सिखाते हैं, वे छात्रों को खुद को विकसित करना, खुद को अनुशासित करना, दूसरों के साथ सहयोग करना, नियमों का पालन करना और प्रतियोगिता के माध्यम से अपनी उपलब्धियों का परीक्षण करना भी सिखाते हैं।

स्कूल काम, पेशे या व्यवसायों के बारे में अपेक्षाओं के समूह सिखाते हैं, जिनका पालन वे परिपक्व होने पर करेंगे। ज्ञान प्रदान करने की औपचारिक जिम्मेदारी स्कूलों की होती है। उन विषयों में जो हमारे समाज में वयस्क कामकाज के लिए सबसे केंद्रीय हैं। यह कहा गया है कि घर पर सीखना व्यक्तिगत, भावनात्मक स्तर पर होता है, जबकि स्कूल में सीखना मूल रूप से बौद्धिक होता है।

"नियमित शिक्षा" शब्द का प्रयोग प्रायः विकासशील बच्चों के शैक्षिक अनुभव का वर्णन करने के लिए किया जाता है। इस पाठ्यक्रम की सामग्री को अधिकांश राज्यों में राज्य मानकों द्वारा परिभाषित किया गया है, जिनमें से कई ने सामान्य कोर राज्य मानकों को अपनाया है। ये मानक अकादमिक कौशल को परिभाषित करते हैं जो छात्रों को प्रत्येक ग्रेड स्तर पर हासिल करना चाहिए। यह मुफ्त और उपयुक्त सार्वजनिक शिक्षा है जिसके खिलाफ विशेष शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र के कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जाता है।

इसके विपरीत, "सामान्य शिक्षा" का उपयोग "नियमित शिक्षा" के साथ परस्पर किया जाता है, लेकिन इसे प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि "सामान्य शिक्षा के छात्रों" के विपरीत "सामान्य शिक्षा के छात्रों" की बात करना राजनीतिक रूप से सही है। "नियमित" का अर्थ है कि विशेष शिक्षा के छात्र अनियमित हैं, या किसी तरह त्रुटिपूर्ण। जबकि यह सभी बच्चों के लिए डिज़ाइन किया गया पाठ्यक्रम है जो राज्य के मानकों को पूरा करने के लिए हैं (या यदि अपनाया गया है, तो सामान्य कोर राज्य मानक), सामान्य शिक्षा कार्यक्रम भी वह कार्यक्रम है जो राज्य की वार्षिक परीक्षा – NCLB द्वारा आवश्यक है (नो चाइल्ड लेफ्ट बिहाइंड) का मूल्यांकन करने के लिए डिज़ाइन किया गया है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

नियमित शिक्षा और विशेष शिक्षा (Regular Education and Special Education) :– विशेष शिक्षा के छात्रों के लिए एफएपीई प्रदान करते हैं, आईईपी लक्ष्यों को सामान्य कोर राज्य मानकों के साथ "गठबंधन" किया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में, उन्हें यह दिखाना चाहिए कि एक छात्र को मानक के अनुसार पढ़ाया जा रहा है। कुछ मामलों में, जिनकी अक्षमताएं गंभीर हैं, आईईपी एक अधिक "कार्यात्मक कार्यक्रम को प्रतिबिंबित करेगा, जो कि विशिष्ट ग्रेड–स्तरीय मानकों से सीधे जुड़े होने के बजाय सामान्य कोर राज्य मानकों के साथ बहुत शिथिल रूप से गठबंधन किया जाएगा। ये छात्र सबसे अधिक बार होते हैं स्व–निहित कार्यक्रम, और वे वैकल्पिक परीक्षा देने के लिए अनुमत तीन प्रतिशत छात्रों का हिस्सा होने की भी सबसे अधिक संभावना है।

जब तक छात्र सबसे अधिक प्रतिबंधात्मक वातावरण में न हों, वे कुछ समय नियमित शिक्षा के माहौल में बिताएंगे। अक्सर, स्वयं के कार्यक्रमों में बच्चे नियमित / सामान्य शिक्षा कार्यक्रमों में छात्रों के साथ "विशेष" जैसे शारीरिक शिक्षा, कला और संगीत में भाग लेंगे। नियमित शिक्षा (आईईपी रिपोर्ट का हिस्सा) में बिताए गए समय का आकलन करते समय लंचरूम में और अवकाश के लिए खेल के मैदान में सामान्य छात्रों के साथ बिताए गए समय को भी "सामान्य शिक्षा" पर्यावरण में समय के रूप में श्रेय दिया जाता है।

विशेष शिक्षा एकीकृत शिक्षा और समावेशी शिक्षा के बीच मुख्य अंतर यह है कि विशेष शिक्षा शिक्षा की एक अलग प्रणाली है जो मुख्यधारा की शिक्षा के बाहर विकलांग बच्चों की जरूरतों को पूरा करती है, जबकि एकीकृत शिक्षा और समावेशी शिक्षा एक ऐसी सेटिंग के भीतर होती है जहां विकलांग छात्र सीखते हैं विकलांग साथियों के साथ।

विशेष शिक्षा में, एक छात्र के लिए आवश्यक सेवा और सहायता दूसरे छात्र की आवश्यकता से भिन्न हो सकती है। विशेष शिक्षा में एक व्यक्ति–आधारित दृष्टिकोण होता है और छात्रों को शिक्षा में प्रगति करने के लिए आवश्यक संसाधन देने पर ध्यान केंद्रित करता है। एकीकृत कक्षा के भीतर की स्थिति काफी अलग है, क्योंकि छात्र को नियमित पाठ्यक्रम के अनुकूल बनाने के लिए अतिरिक्त सहायता की आवश्यकता होगी। जब समावेशी शिक्षा की बात आती है तो यह स्थिति और बदल जाती है। समावेशी कक्षा आम तौर पर छात्रों के विभिन्न सीखने के पैटर्न को स्वीकार करती है और प्रत्येक छात्र की अनूठी और व्यक्तिगत आवश्यकता को पूरा करने के लिए खुद को अनुकूलित करती है।

परिवार (family) :– बच्चे की पहली दुनिया उसके परिवार की होती है। यह अपने आप में एक ऐसी दुनिया है, जिसमें बच्चा जीना, हिलना–डुलना और अपने अस्तित्व को पाना सीखता है। इसके भीतर न केवल जन्म, सुरक्षा और भोजन के जैविक कार्य होते हैं, बल्कि विभिन्न आयु और लिंगों के व्यक्तियों के साथ उन पहले और अंतरंग संबंधों का भी विकास होता है जो बच्चे के व्यक्तित्व विकास का आधार बनते हैं।

परिवार समाजीकरण की प्राथमिक एजेंसी है। यहीं पर बच्चे में स्वयं की प्रारंभिक भावना और आदत–प्रशिक्षण–खाने, सोने आदि का विकास होता है। बहुत हद तक, बच्चे की शिक्षा, चाहे वह आदिम या आधुनिक जटिल समाज में हो, प्राथमिक परिवार के घेरे के भीतर होती है – समूह बच्चे का पहला मानवीय संबंध उसके परिवार के तत्काल सदस्यों – माता या नर्स, भाई–बहन, पिता और अन्य करीबी रिश्तेदारों के साथ होता है।

होम स्कूली शिक्षा (Home Schooling) :– होमस्कूलिंग (जिसे घर आधारित शिक्षा भी कहा जाता है), एक शैक्षिक प्रक्रिया है जहां माता–पिता या शिक्षक बच्चों को सार्वजनिक रूप से शिक्षित करने या स्कूल की सेटिंग में औपचारिक रूप से शिक्षित करने के बजाय घर पर पढ़ाते हैं। अनिवार्य स्कूल उपस्थिति कानून के लागू होने से पहले होमस्कूलिंग बहुत आम थी। आज, होमस्कूलिंग पहले की तरह सामान्य नहीं है – लेकिन यह लोकप्रियता में बढ़ रहा है।

अधिकांश राज्यों और न्यायालयों में होमस्कूलिंग की अनुमति है यदि माता–पिता अपने बच्चों को पब्लिक स्कूलों में दाखिला लेने में असहज महसूस करते हैं। कई माता–पिता अपने बच्चों को होमस्कूलिंग का समर्थन करते हैं क्योंकि उनके पास पाठ्यक्रम की कठोरता का नियंत्रण है, यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि उनके बच्चे दिन के दौरान एक सुरक्षित वातावरण में हैं, और नैतिक और धार्मिक निर्देश प्रदान कर सकते हैं जो पब्लिक स्कूल सिस्टम के भीतर अनुमत नहीं हैं। दूरदराज के या ग्रामीण क्षेत्रों में या विदेशों में रहने वाले कई माता–पिता अपने बच्चों को होमस्कूल करने का विकल्प चुनते हैं।

माता–पिता अपने बच्चों को होमस्कूलिंग के लिए प्राथमिक कारण बताते हैं (1) स्थानीय स्कूलों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता से असंतोष और (2) अपने बच्चों की शिक्षा और विकास में अधिक शामिल होने की इच्छा। होमस्कूलिंग माता–पिता न केवल स्थानीय स्कूलों द्वारा प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणवत्ता से असंतुष्ट हैं, वे बदमाशी, स्कूल के माहौल और स्कूलों की विशेष जरूरतों और अपने बच्चों की व्यक्तिगत योग्यता को पूरा करने में असमर्थता के बारे में चिंतित हैं।

होमस्कूलिंग उन परिवारों में विशेष रूप से लोकप्रिय है जो ग्रामीण क्षेत्रों में दूसरों से अलग रहते हैं, जो विदेश में रहते हैं, और उन परिवारों के लिए जिनकी नौकरी या जीवन शैली के लिए लगातार यात्रा की आवश्यकता होती है। छात्र अभिनेताओं, एथलीटों और संगीतकारों

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

को भी उनके नियमित अभ्यास और प्रशिक्षण दिनचर्या को समायोजित करने के लिए अक्सर माता–पिता या पेशेवर ट्यूटर द्वारा होमस्कूल किया जाता है।

यदि किसी छात्र की विकलांगता और चिकित्सा स्थिति का अर्थ है कि वे लंबे समय तक स्कूल नहीं जा पा रहे हैं, तो स्कूल छात्र को घर पर अपने सीखने में भाग लेना जारी रखने में मदद कर सकता है।

- जब तक छात्र कक्षा में लौटने के लिए तैयार नहीं हो जाता, तब तक स्कूल उनकी सहायता कर सकता हैः
- घर पर उपयोग करने के लिए एक शैक्षिक कार्यक्रम प्रदान करना
- उनके और उनके परिवार के साथ संबंध बनाए रखना
- स्कूल के साथ उनकी सगाई का समर्थन करना।
- स्कूल में उनकी वापसी की योजना बनाना और समर्थन करना।

ज्यादातर मामलों में, स्कूल अतिरिक्त धन के लिए आवेदन करने की आवश्यकता के बिना सहायता प्रदान कर सकता है। यदि किसी छात्र की अत्यधिक विशिष्ट आवश्यकताएँ हैं, तो स्कूल घर–आधारित शैक्षिक सहायता कार्यक्रम के माध्यम से अतिरिक्त धन के लिए आवेदन कर सकता है। स्कूल के लिए प्रतिपूर्ति की जा सकती है

समुदाय (Community) :– शिक्षा की एक अन्य महत्वपूर्ण एजेंसी समुदाय है। यह निश्चित वातावरण प्रदान करता है जो शिक्षार्थी के व्यक्तिगत अनुभवों की आपूर्ति करता है जिसे स्कूल टैप करता है। समुदाय को शामिल करने वाला सामाजिक मनोविज्ञान का अनुभव शिक्षार्थी की शैक्षिक उपलब्धियों को निर्धारित करने में एक लंबा रास्ता तय करता है। फिर भी, समुदाय के इन शैक्षिक मूल्यों को आंतरिक कहा जा सकता है।

शैक्षिक विकास में समुदाय की बाहरी भूमिका कम महत्वपूर्ण नहीं है जब तक कि कोई समुदाय आवश्यक भूमि प्रदान नहीं करता है, एक मालिक को स्कूल स्थापित करना बहुत मुश्किल हो सकता है। समुदाय उपलब्ध भूमि को चिह्नित करने के बाद भी, झाग की प्रगति, विकास और विकास को सहन करने के लिए स्कूल के साथ काम करता है, कई समुदायों, जैसे प्रगति, विकास और मिशनरियों ने, सरकारी अनुदान–सहायता प्राप्त स्कूलों से पहले वास्तव में अपने स्वयं के स्कूल स्थापित किए। अनुदान देने के बावजूद समुदाय स्कूलों को धन और सुविधाएं प्रदान करना जारी रखते हैं और शिक्षण सीखने की प्रक्रिया की निगरानी अपने तरीके से करते हैं।

शिक्षा में समुदाय की भूमिका (Role of community in education) :– समुदाय शिक्षा की एक अनौपचारिक और सक्रिय एजेंसी है। इसे कमोबेश सामान्य प्रथाओं, आदर्शों, विचारों, मूल्यों और संस्कृति के साथ एक विशेष क्षेत्र में एक साथ बसे परिवारों के समूह के रूप में परिभाषित किया गया है। यह अपने व्यक्तियों की बेहतरी और प्रगति के लिए संगठन का एक गतिशील रूप है। यह अपने सदस्यों का सामाजिककरण करके शिक्षा से सामान्य और उदार प्रदान करता है। स्कूल और समुदाय और घर और समुदाय के बीच बेहतर तालमेल भी होता है।समुदाय के प्रमुख शैक्षिक कार्य निम्नलिखित शीर्षकों में दिए गए हैं –

समुदाय के शैक्षिक कार्य (Educational Functions of Community) :–

(1) स्कूल में उपस्थिति बढ़ाना :– समुदाय अपने सदस्यों को प्रेरित करने के लिए स्कूल में छात्रों की उपस्थिति और नामांकन बढ़ाने में मदद करता है।

(2) भौतिक सुविधाएं प्रदान करना :– यह सामुदायिक स्कूल के लिए बेहतर शिक्षा के लिए भवन, शिक्षण सहायक सामग्री, शिक्षकों और अन्य तत्वों जैसी भौतिक सुविधाएं प्रदान करने में मदद करता है।

(3) वित्त पोषण शिक्षा :– यह शैक्षिक उद्देश्य के लिए वित्तीय सहायता या दान प्रदान करता है। यह समुदाय के शैक्षिक विकास के लिए अपना समर्थन देने के लिए विभिन्न उदार व्यक्तियों से मदद मांगता है।

(4) अच्छा माहौल बनाए रखना स्कूल :– समुदाय स्कूल की जिम्मेदारी लेता है और संस्था में अनुशासन और मर्यादा बनाए रखने में मदद करता है। यह समुदाय की जरूरतों को ध्यान में रखते हुए स्कूलों की समय सारिणी तैयार करने में भी मदद करता है।

(5) अनौपचारिक शिक्षा का मीडिया प्रदान करना :– समुदाय अपनी अनौपचारिक एजेंसियों जैसे संग्रहालयों, कला दीर्घाओं, पुस्तकालयों, संगीत नाटक केंद्रों, मनोरंजन केंद्रों, धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष संस्थानों आदि के माध्यम से स्कूल में अपने सदस्यों के सर्वांगीण विकास के लिए समर्थन प्रदान करता है। इसलिए समुदाय शैक्षिक विकास के लिए विभिन्न तरीकों से स्कूल की मदद करता है। विद्वान और योग्य छात्र समुदाय

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

के विकास के लिए अपनी सेवा प्रदान करते हैं, इसलिए समुदाय और स्कूल दोनों निकट से जुड़े हुए हैं और समाज के एक बड़े मिशन यानी सीखने वाले समाज के निर्माण के लिए परस्पर जुड़े हुए हैं।

संचार मीडिया (Mass media) :– प्रिंट प्रौद्योगिकी के प्रारंभिक रूपों से लेकर इलेक्ट्रॉनिक संचार (रेडियो, टीवी, आदि) तक, मीडिया व्यक्तियों के व्यक्तित्व को आकार देने में केंद्रीय भूमिका निभा रहा है। पिछली शताब्दी के बाद से, रेडियो, चलचित्र, रिकॉर्डेड संगीत और टेलीविजन जैसे तकनीकी नवाचार समाजीकरण के महत्वपूर्ण एजेंट बन गए हैं। टेलीविजन, विशेष रूप से, लगभग पूरी नई दुनिया में बच्चों के समाजीकरण में एक महत्वपूर्ण शक्ति है। अमेरिका में किए गए एक अध्ययन के अनुसार, औसत युवा (6 से 18 वर्ष की आयु के बीच) स्कूल में पढ़ने की तुलना में 'ट्यूब' (15,000 से 16,000 घंटे) देखने में अधिक समय व्यतीत करता है। सोने के अलावा टीवी देखना युवाओं का सबसे अधिक समय लेने वाला काम है।

शिक्षा में मास मीडिया की भूमिका (Role of Mass Media in Education) :– शैक्षिक संचार के जनसंचार माध्यमों में तकनीकी नवाचार का अर्थ है कि शिक्षा को अब दूर–दूर तक पहुँचाया जा सकता है। वह भी बिना भौगोलिक बाधाओं के। उदाहरण के लिए, भारत में बैठे व्यक्ति को संयुक्त राज्य अमेरिका में दिए जा रहे व्याख्यान से लाभ हो सकता है। यह बहुत समय, प्रयास और धन बचाता है। प्रौद्योगिकी में लगातार बढ़ते नवाचारों के साथ, शिक्षा अब दूर के स्थानों से कंप्यूटर स्क्रीन पर वास्तविक समय में प्रसारित की जा सकती है। शिक्षा के क्षेत्र में जनसंचार माध्यमों की प्रमुख भूमिकाएँ हैं:

सार्वभौमिक पहुंच (Universal reach) :– मास मीडिया ने दुनिया को छोटा बना दिया है; इसने लोगों को पहले की तरह जोड़ा है। शिक्षा एक ऐसी चीज है जो सार्वभौमिक होनी चाहिए। मास मीडिया ने उस अंतर को पाटने में काफी मदद की है। दूसरे शब्दों में, यह अब हर किसी की पहुंच में है और दुनिया को एक बेहतर जगह बना रहा है।

जानकारी का भंडारण (Storage of information) :– मास मीडिया सूचनाओं को संग्रहीत करने की अनुमति देता है जिसे किसी भी समय कहीं से भी एक्सेस किया जा सकता है। यह हमारी उंगलियों पर शाब्दिक रूप से उपलब्ध है, जो बहुत समय और ऊर्जा बचाता है। इसलिए, यह शिक्षा के क्षेत्र में एक उपयोगी संसाधन के रूप में कार्य करता है।

कोई शारीरिक बाधा नहीं (No Physical Constraints) :– जनसंचार माध्यमों के सामने सबसे बड़ी कमियों में से एक शारीरिक बाधा थी, लेकिन अब नहीं है। मास मीडिया ने दूरी कम कर दी है और दुनिया को अच्छे के लिए छोटा कर दिया है। उदाहरण के लिए, अभी ज्ञान प्राप्त करने के लिए भौतिक रूप से उस स्थान पर उपस्थित होना आवश्यक नहीं है।

संगठित प्रभाव (Organized Influence) :– पहले सूचना का माध्यम असंगठित था। अब, सूचना का मास मीडिया सूचना देने में बहुत अधिक संगठन और परिष्कार प्रदान करता है। इसके अलावा, प्रदान की जा रही जानकारी की प्रामाणिकता की तुरंत जाँच और समीक्षा की जा सकती है। यह मास मीडिया की उपलब्धता से संभव है। इसके परिणामस्वरूप झूठी सूचना या अफवाहों में कमी और उन्मूलन होता है।

फलदायी परिणाम (Fruitful Results) :– मास मीडिया में वर्तमान तकनीकी नवाचार का एक और बड़ा लाभ छात्रों की याद रखने की क्षमता में वृद्धि है। कई वैज्ञानिक शोधों ने सिद्ध किया है कि श्रव्य–दृश्य प्रारूप के माध्यम से व्याख्यानों को प्रसारित करना काफी प्रभावी है। यह केवल एक ऑडियो व्याख्यान की तुलना में मस्तिष्क की याद रखने की क्षमता पर कहीं अधिक सकारात्मक प्रभाव डालता है। सबसे बढ़कर, यह केवल जनसंचार माध्यमों के कारण ही संभव है।

Unit :– 3.4 Roles of Governmental Organizations – NCERT, SCERT,NCTE,UGC,Ministry of Education (सरकारी संगठनों की भूमिकाएँ–एनसीईआरटी, एससीईआरटी, एनसीटीई, यूजीसी, शिक्षा मंत्रालय)

एनसीटीई की भूमिका (ROLE OF NCTE) :– राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद जिसे अंग्रेजी भाषा में National Council for Teacher Education (NCTE) कहते है। इस परिषद की स्थापना भारतीय सरकार द्वारा 1973 में की गई। इस परिषद का मुख्य उद्देश्य शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव करना था। इस परिषद का कार्य शिक्षक शिक्षा से संबंधित क्षेत्रों में सरकार को सलाह–मशवरा देना था। 1993 में इस परिषद को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद National Council वित Teacher Education (NCTE) का मुख्य कार्यालय दिल्ली में स्थापित किया गया हैं। यह परिषद शिक्षकों की शिक्षा से संबंधित सभी समस्याओं का अध्ययन करती है तत्पश्चात यह उन समस्त समस्याओं के समाधान हेतु अपने सुझाव प्रस्तुत करती हैं। इस परिषद का निर्माण 55 सदस्यों के साथ हुआ है जिसमें अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और सचिव भी सम्मिलित हैं। जिनका कार्यकाल 4 वर्ष और अन्य सदस्यों का कार्यकाल 2–2 वर्ष होता हैं।

यह भारतीय शिक्षक शिक्षा से संबंधित समस्त पहलुओं का अध्ययन करने का कार्य करती है और साथ ही शिक्षक–शिक्षा से संबंधित पाठ्यक्रम की संरचना का भी निर्माण करती है। यह शिक्षक शिक्षा की व्यवस्थाओं का बारीकियों से अध्ययन करने का कार्य भी करती हैं।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद national council for teacher education समय–समय पर शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में परिवर्तन करते रहती है उदाहरणतः हाल ही में बी.एड के पाठ्यक्रमों में बदलाव आना इस परिषद की भूमिका को दर्शाता है। इस परिषद की स्थापना के पश्चात शिक्षक–शिक्षा की गुणवत्ता में निश्चित ही वृद्धि हुई है। वर्तमान शिक्षक–शिक्षा का पाठ्यक्रम अधिक सामाजिक है। शिक्षक शिक्षा के पाठ्यक्रम में बाल मनोविज्ञान एवं मनोविज्ञान की समस्त विशेषताओं को सम्मिलित किया गया हैं। NCTE की स्थापना के पश्चात शिक्षक–शिक्षा से संबंधित पाठ्य–पुस्तकों की गुणवत्ता में सुधार आया है। जिसमें छात्र वास्तविक समस्याओं से अवगत हो पाते है और वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप खुद को तैयार करते हैं। परिषद का शिक्षक–शिक्षा में बेहद अहम योगदान है ।

राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (National Council for Teacher Education) की स्थापना के पश्चात छात्र समाज और सरकार सभी शिक्षक की महत्ता से परिचित हुए है क्योंकि किसी भी राष्ट्र के विकास हेतु शिक्षा का बेहद अहम योगदान होता है और राष्ट्र की सम्प्रभुता की रक्षा हेतु एवं उज्ज्वल भविष्य हेतु गुणवान कौशलों वाले शिक्षकों का निर्माण किया जाना बेहद आवश्यक है और यह सभी कार्य इस परिषद द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं।

एससीईआरटी की भूमिका (ROLE OF SCERT) :– राज्य शैक्षिक और प्रशिक्षण परिषद (एससीईआरटी) एक शीर्ष निकाय है, जो राज्य में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए जिम्मेदार है। राज्य शिक्षा संस्थान (एसआईई), जो सामान्य शिक्षा विभाग के एक हिस्से के रूप में कार्य करता था, को स्कूली शिक्षा को एक नया जोर और दिशा देने के लिए एससीईआरटी के रूप में परिवर्तित किया गया था। SCERT, केरल, 1994 में स्थापित किया गया था।

यह एक स्वायत्त निकाय है जिसे प्री–स्कूल से लेकर उच्च माध्यमिक स्तर तक सभी शैक्षणिक कार्यक्रमों की योजना, कार्यान्वयन और मूल्यांकन का काम सौंपा गया है। एससीईआरटी स्कूली शिक्षा के शैक्षणिक पहलुओं से संबंधित है जिसमें पाठ्यक्रम तैयार करना, पाठ्यपुस्तकें तैयार करना, शिक्षक की हैंडबुक और शिक्षक प्रशिक्षण शामिल हैं। यह स्कूली शिक्षा से संबंधित नीतिगत मामलों पर सरकार को सलाह देता है।

राज्य शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् छब्त्ज् के प्रारूप के अनुसार प्रत्येक राज्य में गठित की गई है । SCERT में कार्यक्रम परामर्श समिति होती है जिसका प्रमुख राज्य शिक्षा मंत्री होता है । एस.सी.ई.आर.टी. के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं

1. यह राज्य में अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालयों , सेकेण्डरी प्रशिक्षण विद्यालय तथा प्रारंभिक प्रशिक्षण विद्यालय की कार्य प्रणाली की देखरेख करता है ।

2. यह राज्य में सेवापरक अध्यापक शिक्षा का प्रबंध करता है तथा प्री स्कूल , प्रारंभिक , माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए अधिकारी नियुक्त करता है ।

3. यह अध्यापक प्रशिक्षण केन्द्रों में सेवापरक अध्यापक शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है ।

4. अध्यापकों तथा अध्यापक शिक्षकों के सर्वत्र विकास के लिए दूरस्थ शिक्षा तथा अन्य कार्यक्रमों का आयोजन करता है ।

5. यह प्रीस्कूल , प्रार्राभिक , माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिए अध्यापक शिक्षण संस्थानों में पाठ्यपुस्तकों , निर्देशन सामग्री का निर्माण तथा पाठ्यक्रम का निर्माण करता है ।

6. यह UNICEF , NCERT अन्य एजेन्सियों द्वारा चालित विभिन्न विशिष्ट शैक्षिक प्रोजेक्ट कार्यान्वित करता है जिससे स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सके ।

एनसीईआरटी की भूमिका (ROLE OF NCERT) – एनसीईआरटी, या राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, एक स्वायत्त संगठन है जो शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के अधीन कार्य करता है। एनसीईआरटी भारत में स्कूलों के लिए पाठ्यपुस्तकों, शैक्षिक सामग्री और पूरक पठन सामग्री के अनुसंधान, विकास और प्रकाशन के लिए जिम्मेदार है। एनसीईआरटी की भूमिका पूरे भारत में छात्रों, शिक्षकों और स्कूलों को उच्च गुणवत्ता वाले शैक्षिक संसाधन प्रदान करना है। एनसीईआरटी के कुछ प्रमुख कार्यों में शामिल हैं:

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

पाठ्यपुस्तकों और अन्य शैक्षिक संसाधनों का विकास और प्रकाशन :– भारत में स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले सभी विषयों के लिए पाठ्यपुस्तकों के विकास और प्रकाशन के लिए एनसीईआरटी जिम्मेदार है। इन पाठ्यपुस्तकों को छात्रों को एक व्यापक और संतुलित शिक्षा प्रदान करने के लिए डिजाइन किया गया है, और ये नवीनतम शोध और शिक्षा में सर्वोत्तम प्रथाओं पर आधारित हैं।

शोध करना :– एनसीईआरटी शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर शोध करता है, जिसमें शिक्षण और सीखने के तरीके, पाठ्यक्रम विकास और मूल्यांकन अभ्यास शामिल हैं। इस शोध के निष्कर्षों का उपयोग शैक्षिक संसाधनों और नीतियों के विकास को सूचित करने के लिए किया जाता है।

शिक्षकों को प्रशिक्षण और सहायता प्रदान करना :– एनसीईआरटी शिक्षकों को उनके शिक्षण कौशल और ज्ञान में सुधार करने में मदद करने के लिए प्रशिक्षण और सहायता प्रदान करता है। इसमें प्रशिक्षण सामग्री विकसित करना, कार्यशालाएं और सेमिनार आयोजित करना और ऑनलाइन संसाधन उपलब्ध कराना शामिल है।

नीतियों और दिशानिर्देशों का विकास :– एनसीईआरटी शिक्षा से संबंधित नीतियों और दिशानिर्देशों को विकसित करता है, जैसे कि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, जो पूरे भारत में पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के विकास के लिए एक व्यापक रूपरेखा प्रदान करती है।

कुल मिलाकर, एनसीईआरटी की भूमिका गुणवत्तापूर्ण शिक्षा को बढ़ावा देना और पूरे भारत में स्कूलों, शिक्षकों और छात्रों को शैक्षिक संसाधन और सहायता प्रदान करना है।

यूजीसी की भूमिका (ROLE OF UGC) :– विश्वविद्यालय अनुदान आयोग जिसे अंग्रेजी भाषा में University Grants Commission (UGC) कहा जाता हैं। इसके निर्माण का श्रेय अंग्रेजी शासन को जाता है 1944 में विश्वविद्यालयों के स्तर एवं गुणवत्ता में सुधार करने एवं समस्त विश्वविद्यालयों में एकरूपता लाने हेतु सार्जेन्ट योजना का निर्माण किया गया। इसके तहत सार्जेन्ट योजना में शिक्षा के स्तर में सुधार करने हेतु विश्वविद्यालय अनुदान समिति न्ळब् के निर्माण का सुझाव सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया।

सर्वप्रथम इसको एक समिति के रूप में चुना गया। स्वतंत्र भारत सरकार द्वारा 1946 में विश्वविद्यालय अनुदान समिति का गठन किया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात वर्ष 1953 में इसको समिति से हटाकर आयोग में परिवर्तित कर दिया गया।

आयोग का मुख्यालय नई दिल्ली में स्थित है एवं साथ ही इसके अन्य 6 कार्यालय भी हैं। भारतीय संसद द्वारा इस आयोग को 1956 में संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया। यह क्षण विश्ववविद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने हेतु बेहद महत्वपूर्ण था। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) के संगठन की हम बात करें तो इस आयोग में एक अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और साथ ही 10 अन्य सदस्यों को इसके संगठन में सम्मिलित किया जाता हैं। इन 10 सदस्यों में कृषि,उद्योग,कानून एवं स्वास्थ्य के क्षेत्र से जुड़े सदस्यों को सम्मिलित किया जाता हैं।

इस आयोग के अध्यक्ष का कार्यकाल 5 वर्ष एवं उपाध्यक्ष और इसके अन्य सदस्यों का कार्यकाल 3 वर्ष होता हैं। इसके अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष एवं सभी सदस्यों का चयन सावधानीपूर्वक किया जाता हैं। शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञानवान एवं उच्च शिक्षा में सर्वोच्च पद के कई कार्यकाल पूर्ण करने के बाद ही इस पद में लोगों का चयन किया जाता हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) वह संस्था है जो समस्त विश्वविद्यालयों को अपने नियंत्रण में रखती है उनके लिए नियमों एवं नीतियों का निर्माण करती हैं।

यूजीसी द्वारा समस्त विश्वविद्यालयों हेतु गाइडलाइन का निर्धारण किया जाता हैं। यह विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु अनुमति प्रदान करता है उन्हें मान्यता प्रदान करता है और सबसे महत्वपूर्ण यह समस्त विश्वविद्यालयों को उनकी अवस्यक्तानुसार अनुदान (आर्थिक सहायता) देने का कार्य भी करता है इसलिए इसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission) कहा जाता हैं। इस आयोग को 1956 में भारतीय शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में चुना गया।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के कार्य – विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू०जी०सी) के कार्यो का क्षेत्र बहुत व्यापक है क्योंकि इसके अंतर्गत समस्त देश के विश्वविद्यालय आते है और उनके संचालन हेतु समग्र नीति–नियमों के निर्माण करने की जिम्मेदारी इसकी ही होती हैं।

1– यह विश्वविद्यालय निर्माण करने की अनुमति एवं मान्यता प्रदान करने का कार्य करती हैं।

2– विश्वविद्यालय की शैक्षिक गुणवत्ता एवं समानता बनाए रखने हेतु यह सरकार को उचित परामर्श देता है परामर्श देने से पहले यह विश्वविद्यालय का निरीक्षण कर उचित स्रोतों एवं जानकारियों को एकत्रित करता हैं।

3– नए विश्वविद्यालयों के निर्माण हेतु यह क्षेत्रीय एवं प्रांतीय सरकारों को समक्ष सुझाव प्रस्तुत करता हैं।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

4– यह समय–समय पर सामाजिक आवश्यकताओं का अध्ययन कर पाठ्यक्रम में संशोधन करने का कार्य करता है और बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष को देखते हुए यह नवीन मूल्यांकन पद्धति को भी अपनाने का कार्य कराया हैं।

5– विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उन छात्रों को छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है जो विदेशों में अनुसंधान कार्यक्रमों द्वारा जाते है एवं अनुसंधान संबंधित सामग्री एवं नीतियों के निर्माण का कार्य भी इसी के द्वारा किया जाता हैं।

6– उच्च शिक्षा के शिक्षकों की योग्यता,परीक्षा,पाठ्यक्रम, वेतन एवं अन्य नीति–नियमों का निर्धारण भी इसी के द्वारा दिया जाता है और इनके संबंध में अध्ययन कर उचित संशोधन करने हेतु सरकार को सलाह एवं परामर्श देने का कार्य भी इसी के द्वारा किया जाता हैं।

7– शिक्षकों की पदोन्नति करना,शिक्षकों का एक जगह से दूसरी जगह स्थानांतरण करना।

8– शिक्षक–शिक्षा हेतु नवीन पाठ्यक्रम का निर्धारण करना, शिक्षक शिक्षा में नवीन संशोधन करना एवं शिक्षक बनने हेतु आवश्यक न्यूनतम योग्यताओं का निर्धारण कर उसे लागू करना

9– यह आवश्यकतानुसार विश्वविद्यालयों में कार्यक्रम एवं समारोह का आयोजन करते रहता है जिससे लोग उच्च शिक्षा की आवश्यकताओं को समझ सकें एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सकें।

10– यह राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा (National Eligibility Test) हेतु योजनाओं के निर्माण के साथ–साथ न्यूनतम योग्यताओं एवं परीक्षा कार्यक्रमों का आयोजन करता हैं।

शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार – शिक्षा मंत्रालय, जिसे पहले मानव संसाधन विकास मंत्रालय के नाम से जाना था, भारत सरकार भारत सरकार का एक मंत्रालय है। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, पूर्व में शिक्षा मंत्रालय (25 सितंबर 1985 तक), भारत में मानव संसाधनों के विकास के लिए जिम्मेदार है। मंत्रालय को दो विभागों में बांटा गया हैः स्कूल शिक्षा और साक्षरता विभाग, जो प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, वयस्क शिक्षा और साक्षरता, और उच्च शिक्षा विभाग से संबंधित है, जो विश्वविद्यालय शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, छात्रवृत्ति आदि से संबंधित है। तत्कालीन शिक्षा मंत्रालय अब 26 सितंबर 1985 तक इन दोनों विभागों के अधीन है। मंत्रालय का नेतृत्व कैबिनेट–रैंक वाले मानव संसाधन विकास, मंत्रिपरिषद का एक सदस्य करता है।

मंत्रालय के मुख्य उद्देश्य हैं

शिक्षा पर राष्ट्रीय नीति तैयार करना और यह सुनिश्चित करना कि यह पत्र और भावना में लागू हो पूरे देश में शिक्षण संस्थानों की पहुंच और सुधार सहित योजनाबद्ध विकास, उन क्षेत्रों में शामिल हैं, जहां लोगों को आसानी से पहुंच उपलब्ध नहीं है। गरीबों, महिलाओं और अल्पसंख्यकों जैसे वंचित समूहों पर विशेष ध्यान देना छात्रवृत्ति, ऋण सब्सिडी आदि के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करें। समाज के वंचित वर्गों के छात्रों को योग्य बनाना। यूनेस्को और विदेशी सरकारों के साथ–साथ विश्वविद्यालयों, शिक्षा के क्षेत्र में देश के शिक्षा के अवसरों सहित, अंतरराष्ट्रीय सहयोग के साथ मिलकर काम करने सहित।

Unit :–3.5 Roles of various national and international Non&Governmental Organizations (NGOs) in promoting of educational opportunities for children with disabilities (विभिन्न राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय गैर–सरकारी संगठनों (एनजीओ) की भूमिकाएँ विकलांग बच्चों के लिए शैक्षिक अवसरों को बढ़ावा देना) –शिक्षा सबसे शक्तिशाली हथियार है जिसका उपयोग आप दुनिया को बदलने के लिए कर सकते हैं और गरीबी के चक्र से बाहर निकलने का सबसे प्रभावी तरीका है। फिर भी, स्वतंत्रता के 70 वर्षों के बाद भी, भारत में दो करोड़ से अधिक बच्चे (एनएसएस – 2014) अभी भी स्कूल से बाहर हैं। इन बच्चों को न केवल शिक्षा प्राप्त करने के उनके अधिकार से वंचित किया जाता है, बल्कि वे जीवन यापन के लिए रोटी कमाने के लिए अपना बचपन खो देते हैं। सरकार अपने शिक्षा का अधिकार अधिनियम, 2009 के माध्यम से विशेष रूप से हाशिए के क्षेत्र के बच्चों को स्कूल में दाखिला देने और बनाए रखने का रास्ता बना रही है।

एक गैर सरकारी संगठन (एनजीओ) एक नागरिक आधारित संघ है जो सरकार से स्वतंत्र रूप से संचालित होता है, आमतौर पर संसाधनों को वितरित करने या कुछ सामाजिक या राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए।

भारत एक विशाल देश है इसलिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिए उन्हें इसके लिए अन्य एजेंसियों के समर्थन की आवश्यकता है। वे समकालीन भारतीय समाज के महत्वपूर्ण तत्व हैं। उन्हें तीसरा क्षेत्र, गैर–लाभकारी, स्वैच्छिक क्षेत्र आदि माना जाता है। उन्हें सरकार द्वारा समर्थित किया जाता है लेकिन किसी भी सरकारी नीति के अंतर्गत नहीं आता है। उन्हें अपने ग्राहकों के बीच महत्वपूर्ण दर्जा

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

मिला है जो कि उस क्षेत्र में उनके सक्रिय योगदान के कारण वंचित वर्ग है। वे उन क्षेत्रों में काम करते हैं जहां सरकार की पहल सीमित या कमी है।

सरकारी सेवाओं की तुलना में एनजीओ छोटे स्थानों पर काम करने की प्रवृत्ति रखते हैं, जमीन पर प्रभाव प्राप्त करते हैं, जो आमतौर पर नागरिक समाज के सदस्यों पर बहुत कम ध्यान देते हुए बहुमत की जरूरतों को पूरा करते हैं, जिनके पास कोई आवाज नहीं है। CWSN के पुनर्वास की प्रक्रिया में अभिभावक और परिवार प्राथमिक भूमिका निभाते हैं। वे पुनर्वास प्रक्रिया के हर चरण में और उनके विचारों और बच्चों के विचारों में शामिल होते हैं।

पिछले दशक के दौरान विकास कार्यक्रमों को लागू करने के लिए गैर सरकारी संगठनों का तेजी से दोहन किया गया है। हाल के वर्षों में, विकास संसाधनों की बढ़ती मात्रा को सभी क्षेत्रों में गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से और उनके माध्यम से प्रसारित किया गया है। सामाजिक कल्याण में सुधार, गरीबी कम करने और नागरिक समाज के विकास के लिए काम करने वाले गैर सरकारी संगठन अंतरराष्ट्रीय दाताओं पर अधिक निर्भर हो गए हैं, जिससे कई देशों में स्थानीय गैर सरकारी संगठनों में विस्फोटक विकास हुआ है। यह पैटर्न शिक्षा के क्षेत्र में भी पाया जा सकता है, जहां अधिकांश दाता हैं। एजेंसियों ने अपने शैक्षिक कार्यक्रमों को लागू करने के लिए गैर सरकारी संगठनों के माध्यम से आवंटित संसाधनों का विस्तार किया है। अधिक से अधिक, दाता औपचारिक और गैर–औपचारिक दोनों संदर्भों में शिक्षा सेवा–वितरण के लिए अंतरराष्ट्रीय और स्थानीय गैर सरकारी संगठनों का उपयोग करते हैं।

प्रगति के लिए एनजीओ दृष्टिकोण लोगों की भागीदारी के सिद्धांत पर आधारित है। गैर सरकारी संगठनों को वैकल्पिक एजेंसियों के रूप में देखा जाता है जो आजकल ध्यान आकर्षित कर रहे हैं और समाज में जागरूकता, परिवर्तन और सुधार को बढ़ावा देने में उपयोगी हैं। वे गरीबी को कम करने और सतत विकास को बढ़ावा देने में बड़े पैमाने पर शामिल हैं। वे समाज के विभिन्न हिस्सों को सामाजिक सेवाएं प्रदान करने की स्थिति में हैं जबकि सरकार ऐसी सेवाएं प्रदान करने में विफल रहती है।

सभी के लिए शिक्षा (Education for All) :– शिक्षा के लिए वैश्विक अभियान सभी के लिए शिक्षा (ईएफए) आंदोलन सभी बच्चों, युवाओं और वयस्कों के लिए गुणवत्तापूर्ण बुनियादी शिक्षा प्रदान करने के लिए एक वैश्विक प्रतिबद्धता है। यह आंदोलन 1990 में सभी के लिए शिक्षा पर विश्व सम्मेलन में शुरू किया गया था, जब प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने और दशक के अंत तक बड़े पैमाने पर निरक्षरता को कम करने पर सहमति हुई थी। दस साल बाद, कई देशों के इस लक्ष्य तक पहुंचने से दूर, अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने डकार, सेनेगल में फिर से मुलाकात की, और वर्ष 2015 तक सभी के लिए शिक्षा प्राप्त करने की अपनी प्रतिबद्धता की पुष्टि की।

शिक्षा के लिए वैश्विक अभियान (जीसीई) एक नागरिक समाज आंदोलन है जिसका उद्देश्य वैश्विक शिक्षा संकट को समाप्त करना है। जीसीई का मिशन यह सुनिश्चित करना है कि सरकारें अब हर लड़की, लड़के, महिला और पुरुष को मुफ्त गुणवत्ता वाली सार्वजनिक शिक्षा का अधिकार देने के लिए कार्य करें। जीसीई पूरे साल सभी क्षेत्रों से दबाव बनाने और सरकारों और अंतरराष्ट्रीय संस्थानों को जिम्मेदार ठहराने के लिए अभियान चलाता है। जीसीई द्वारा प्रायोजित कुछ गतिविधियां हैं: ग्लोबल एक्शन वीक, साल भर प्रचार और वैश्विक वकालत।

Unit :– 4 Educational Provisions in India (भारत में शैक्षिक प्रावधान)

Unit :– 4.1 Indian constitutional and education: Directive Principles, Fundamental Rights and Duties, Constitutional Provisions on Education (भारतीय संवैधानिक और शिक्षाः निदेशक सिद्धांत, मौलिक अधिकार और कर्तव्य, शिक्षा पर संवैधानिक प्रावधान) :–

राज्य के नीति–निदेशक सिद्धात – संविधान के भाग 4 को 'राज्य के नीति के निदेशक तत्व' शीर्षक दिया गया है। इसके अन्तर्गत अनुच्छेद 36–51 तक के अनुच्छेद शामिल हैं। संविधान का यह भाग आयरलैण्ड के संविधान से प्रभावित है। इसके माध्यम से संविधान राज्य को बताता है कि उसे सामाजिक तथा आर्थिक न्याय सुनिश्चित करने के लिये नैतिक दृष्टि से किन पक्षों पर बल देना चाहिये।

नीति–निदेशक तत्वों का इतिहास (History of Directive Principles) – भारतीय संविधान में नीति–निदेशक तत्वों का विकास, मूल अधिकारों के विकास के साथ ही हो गया था। संविधान सभा के सदस्यों में इस बात पर सहमति बन गई थी कि स्वतंत्र भारत में प्रत्येक व्यक्ति को मूल अधिकार तो दिये ही जाने चाहिये साथ ही राज्य द्वारा ऐसे आदर्शों को साधने की कोशिश भी की जानी चाहिये जो सामाजिक न्याय के लिये वांछनीय हैं। इन सिद्धांतों को मूल अधिकारों के रूप में दिया जाना तत्कालीन परिस्थितियों में संभव नहीं था। ऐसे अधिकार जिन्हे तत्काल देना संभव नहीं था, उन अधिकारों को बी.एन.राव की सलाह पर नीति–निदेशक तत्वों की श्रेणी में रख दिया गया ताकि जब सरकारें सक्षम हो जाएंगी तब धीरे–धीरे इन उपबंधों को लागू करेंगी। इन्ही उपबंधों को संविधान के भाग–4 में रखा गया तथा 'राज्य के नीति के निदेशक सिद्धांत' नाम दिया गया।

राज्य के नीति–निदेशक सिद्धात से संबंधित प्रमुख अनुच्छेद :–

अनुच्छेद–36: परिभाषा नीति–निदेशक तत्वों के संदर्भ में 'राज्य' की परिभाषा है। इसमें भी राज्य का वही अर्थ है जो भाग 3 में है।

अनुच्छेद–37: इस भाग में दिये गए तत्वों का न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय न होते हुए भी देश के शासन में मूलभूत माना गया है तथा विधि बनाने में इन सिद्धांतों को लागू करना राज्य का कर्तव्य होगा।

अनुच्छेद–38: राज्य लोक–कल्याण की अभिवृद्धि के लिये सामाजिक व्यवस्था बनाएगा।

अनुच्छेद–38(1): राज्य लोक–कल्याण की अभिवृद्धि के लिये सामाजिक व्यवस्था बनाएगा ताकि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय हो सके।

अनुच्छेद–38(2): आय, प्रतिष्ठा, सुविधाओं तथा अवसरों की असमानताओं को समाप्त करने का प्रयास करना।

अनुच्छेद–39: राज्य द्वारा अनुसरणीय कुछ नीति–निदेशक तत्व पुरूषों व स्त्रियों को आजीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार।

- समाज में भौतिक संसाधनों के स्वामित्व का उचित वितरण।
- अर्थव्यवस्था में धन तथा उत्पादन के साधनों के अहितकारी केन्द्रीकरण का निषेध।
- पुरूषों व स्त्रियों के लिये समान कार्य के लिये समान वेतन।
- पुरूषों व स्त्री श्रमिकों तथा बच्चों को मजबूरी में आयु या शक्ति की दृष्टि से प्रतिकूल रोजगार में जाने से बचाना।
- बच्चों को स्वतंत्र और गरिमा के साथ विकास का अवसर प्रदान करना और शोषण से बचना।

अनुच्छेद–39 कः समान न्याय और निःशुल्क विधिक सहायता राज्य यह सुनिश्चित करेगा कि विधि तंत्र इस प्रकार काम करे कि समान अवसर के आधार पर न्याय सुलभ हो तथा अर्थिक या किसी भी अन्य आधार पर नागरिक न्याय प्राप्त करने से वंचित न रह जाएँ। यह विधिक सहायता निःशुल्क होगी।

अनुच्छेद–40: ग्राम पंचायतों का गठन – राज्य ग्राम पंचायतों का गठन करने के लिये कदम उठाएगा और उनको ऐसी शक्तियॉ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हे स्वायत्ता शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिये आवश्यक हों।

अनुच्छेद–41: कुछ दशाओं में काम, शिक्षा और लोक सहायता पाने का अधिकार – राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर, काम पाने, शिक्षा पाने, बेकारी, बुढापा, बीमारी और निःशक्तता तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त करने का प्रभावी उपबंध करेगा।

अनुच्छेद–42: काम की न्याय संगत और मानवोचित दशाओं का तथा प्रसूति सहायता का उपबंध।

अनुच्छेद–43: कर्मकारों के लिये निर्बाह मजदूरी , शिष्ट जीवन स्तर व अवकाश की व्यवस्था करना , और कुटीर उद्धोगों को प्रोत्साहित करना !

अनुच्छेद–43 कः उद्योगों के प्रबंधन में कर्मकारों के भाग लेने के लिये उपयुक्त विधान बनाना।

अनुच्छेद–43खः सहकारी समिमियों का उन्नयन – सहकारी समितियों के स्वैच्छिक गठन, स्वायत्त प्रचालन , लोकतंत्रिक नियंत्रण तथा पेशेवर प्रबंधन को प्रोत्साहित करना ।

अनुच्छेद–44: नागरिकों के लिये एक समान सिविल संहिता लागू करने का प्रयास करना।

अनुच्छेद 45: शिशुओं की देखभाल तथा 6 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को शिक्षा देने का प्रयास करना।

अनुच्छेद–46: अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य दुर्बल वर्गो के शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि करना और हर तरह के शोषण व सामाजिक अन्याय से उनकी रक्षा करना।

अनुच्छेद–47: लोगों के पोषहार स्तर और जीवन स्तर को उॅचा करने तथा लोक स्वास्थ्य के सुधार करने को प्राथमिक कर्तव्य मानना तथा मादक पेयों व हानिकारक नशीले पदार्थों के सेवन का प्रतिषेध करने का प्रयास करना।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

अनुच्छेद–48: कृषि और पशुपालन का संगठन – कृषि तथा पशुपालन का संगठन आधुनिक–वैज्ञानिक प्रणालियों के अनुसार करना तथा गाय–बछडों व अन्य दुधारू या वाहक पशुओं की नस्लों का परिरक्षण और सुधार करना व उनके वध का प्रतिषेध करने के लिये कदम उठाना।

अनुच्छेद–48 क: पर्यावरण के संरक्षण व संवर्द्धन तथा वन व वन्य जीवों की रक्षा का प्रयास करना।

अनुच्छेद–49: राष्ट्रीय महत्व के स्मारकों, स्थानों और वस्तुओं का संरक्षण करना

अनुच्छेद–50: कार्यपालिका से न्यायपालिका का पृथक्करणत्र

अनुच्छेद–51: अन्तर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा की अभिवृद्धि ।

Note – 42 वें संविधान संशोधन 1976 में माध्यम से नीति–निदेशक तत्वों में अनुच्छेद 39क, 43क, तथा 48क को अन्तः स्थपित किया गया ।

निदेशक तत्वों की आलोचना (Criticism of Directive Principles) –

- नीति–निदेशक तत्व अक्सर विधायिका व न्यायपालिका के मध्य विवाद/संघर्ष का कारण बन जाते हैं।
- नीति–निदेशक तत्व न्यायालय द्वारा प्रर्वतनीय नहीं है। इनका महत्व राज्य के लिये नैतिक शिक्षा की तरह है, जिससे वह निदेशित हो हैं लेकिन बाधित नहीं।
- इनकों भारतीय संविधान ने मूलभूत तो घोषित किया है, लेकिन इन्हे लागू करने के साधनों को स्पष्ट नहीं करता ।
- इनमें सम्मिलित कई प्रावधानों को आज भी लागू नहीं किया गया जैसे– समान नागरिक संहिता।

मूल अधिकार (Fundamental Rights) – अधिकार नैसर्गिक एवं अप्रतिदेय हैं जो कि राज्य कृत्य के विरुद्ध गारंटी हैं। इनका वर्णन भारतीय संविधान के भाग – 3 में अनुच्छेद 12 से 35 तक किया गया है। इन्हें संविधान में सम्मलित करने का समर्थन नेहरू रिपोर्ट (1928) द्वारा किया गया था। ये संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान से लिए गए हैं। भारतीय संविधान में मूल अधिकारों का प्रारूप जवाहर लाल नेहरू ने तैयार किया था। संविधान के भाग–3 को भारत का अधिकारपत्र (Magnacarta) भी कहा जाता है जिसे मूल अधिकारों का जन्मदाता भी कहा जाता है। भारतीय संविधान का अभिन्न अंग होने के कारण इनमें संशोधन भी किया जा सकता है एवं राष्ट्रीय आपात (अनुच्छेद – 352) के दौरान मौलिक अधिकारों (जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता को छोड़कर) को स्थगित भी किया जा सकता है।

मूल संविधान में, नागरिको के लिए 7 मौलिक अधिकारों की व्यवस्था की गयी थी। परन्तु 44 वें संविधान संशोधन 1978 के द्वारा संपत्ति के अधिकार (अनुच्छेद–31 व 19 क) को मूल अधिकारों से हटाकर अनुच्छेद 300 में रख दिया गया और अब ये सिर्फ कानूनी अधिकार है। मूल अधिकारों में किसी भी प्रकार की संदिग्धता की स्थिति में इसका निपटारा सर्वोच्च न्यायलय द्वारा किया जायेगा। संविधान के निर्माण से पूर्व ही मूल अधिकारों की मांग होना प्रारम्भ हो गयी थी, जो विभिन्न अवसरों पर विभिन्न राष्ट्रवादी नेताओं संस्थाओं व बिल के माध्यम से उठाई गई थी।

- मूल अधिकार – (अनुच्छेद १२ से 35 तक)
- समता का अधिकार (14 – 18)
- स्वतंत्रता का अधिकार (19 – 22)
- शोषण के विरुद्ध अधिकार (23 – 24)
- धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (25 –28)
- संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (29 –30)
- संवैधानिक उपचारों का अधिकार (३२)

मूल अधिकारों और नीति–निदेशक तत्वों में अन्तर (Difference between Fundamental Rights and Directive Principles of State Policy) – मूल अधिकार और नीति–निदेशक तत्व भारतीय संविधान के दो प्रमुख आधार स्तम्भ हैं। इन दानों का उद्देश्य समान है दृ प्रत्यके व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियॉ उपलब्ध कराना जिसमें उनका सम्पूर्ण विकास हो सके। फिर भी, इन दोनों में काफी अन्तर भी हैं जिनमें से प्रमुख इन प्रकार हैं–

मूल अधिकार :–

1. ये संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधानसे लिया गया है

2. इसका वर्णन भारतीय संविधान के भाग 3 में है।
3. इन्हे लागू कराने के लिये न्यायालय की शरण में जा सकते हैं। अतः वह वाद योग्य है।
4. मौलिक अधिकारों के पीछे कानूनी मान्यता है।
5. ये अधिकार नागरिकों को स्वतः प्राप्त हो जाते हैं।
6. इसका लागू होना मुख्यतः व्यक्ति की सजगता और जागरूकता पर निर्भर है।
7. इसका लागू होना मुख्यतः व्यक्ति की सजगता और जागरूकता पर निर्भर है।
8. मूल अधिकार आपालकाल में निलंबित किया जा सकता है (अनु. 20 और 21)

नीति–निदेशक सिद्धांत :–

1.ये आयरलैण्ड के संविधान से लिये गए हैं।

2.इसका वर्णन भारतीय संविधान के भाग –4 में है

3.इन्हे लागू कराने के लिये न्यायालय नहीं जाया जा सकता। अतः यह वाद योग्य नहीं हैं।

4.नीती के निदेशक तत्वों के पीछे राजनीतिक मान्यता है।

5.ये सकार के कर्तव्यों को बढ़ाते हैं।

6.ये अधिकार राज्य सरकार के द्वारा लागू करने के बाद ही नागरिकों को प्राप्त होते है।

7.नीति–निदेशक सिद्धांत ऐसे प्रतिबंधो से मुक्त हैं।

8.नीति–निदेशक तत्व सामान्य और आपात दोनों स्थितियों में बने रहते हैं।

Unit :– 4.2 Acts and Provisions: Free and compulsory education as fundamental rights (article 21A of 2002) and RTE Act 2009 and Amendments; Educational provisions enshrined in RPWD Act, 2016 (अधिनियम और प्रावधानः मौलिक अधिकारों के रूप में मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा (अनुच्छेद 21ए 2002) और आरटीई अधिनियम 2009 और संशोधनय RPWD में निहित शैक्षिक प्रावधान अधिनियम, 2016)

सर्वशिक्षा अभियान – सर्व शिक्षा अभियान योजना 2000–2001 में केंद्र में अटल बिहारी वाजपेई की सरकार ने शुरू की थी। इस योजना का मुख्य उद्देश्य देश के हर बच्चे को शिक्षा देना था। इसके तहत 6–14 वर्ष तक के बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान को मौलिक अधिक के रूप में शामिल किया गया । सर्व शिक्षा अभियान को "सभी के लिए शिक्षा" नाम से भी जाना जाता है, इस अभियान के तहत देश के बच्चों को लिए "सब पढ़े सब बढ़े" का नारा भी दिया गया ताकि हर बच्चा स्कूल तक बहुत सके।

योजना :– सर्व शिक्षा अभियान

किसने शुरू की:– श्री अटल बिहारी विजपयी जी ने

कब शुरु की :– 2001

सर्व शिक्षा अभियान योजना के उद्देश्य : सर्व शिक्षा अभियान का मुख्य उद्देश्य हर भारतीय को शिक्षा देना है –

- देश के 6 से 14 वर्ष तक के हर बच्चे को अनिवार्य शिक्षा देना इस योजना का मुख्य लक्ष्य है।
- इसके लिए निर्धारित समय 2010 तक प्रारंभिक शिक्षा को उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया था ।
- भारत सरकार का यह महत्वपूर्ण कार्यक्रम 86 वें संविधान संशोधन द्वारा प्राथमिक शिक्षा को एक मौलिक अधिकार के रूप में निःशुल्क एवं अनिवार्य रूप से उपलब्ध कराना अनिवार्य कर दिया गया है।
- सर्व शिक्षा अभियान समूचे भारत में राज्य सरकार की सहभागिता से चलाया जा रहा है, ताकि देश के हर गांव के बच्चों की जरूरतों को पूरा किया जा सकें द्य

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

इसके लिए भारत सरकार ने ग्रामीण बच्चों के लिए 1 किलोमीटर की दूरी में प्राथमिक स्कूल खोले हैं और 3 किलोमीटर की दूरी मे उच्च प्राथमिक स्कूल (कक्षा 1 से लेकर 8 तक) की सुविधाएं उपलब्ध कराई जिससे समाज के हर वर्ग अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग के बच्चे भी स्कूलों मे जा सकें।

सर्व शिक्षा अभियान के फायदे :

- सर्व शिक्षा अभियान शुरू करने के तुरंत बाद 2003 तक लगभग सभी बच्चे स्कूल जाने लगे।
- प्राइमरी स्कूलों के लिए संतोष जनक और उच्च गुणवत्ता वाली शिक्षा मुहैया कराना।
- साल 2007 तक प्राथमिक शिक्षा का5 साल पूरा करना और साल 2010 तक स्कूली शिक्षा का 8 साल पूरा करना।
- 2007 तक देश के प्राथमिक स्कूलों में सामाजिक अंतर एवं लिंग भेदभाव को समाप्त करना।
- सर्व शिक्षा अभियान के तहत शिक्षकों के लिए शिक्षक प्रशिक्षण।
- साल 2010 तक भारत में सार्वभौमिक रूप से सर्व शिक्षा अभियान चलाना जिससे देश के सभी बच्चों को शिक्षा मिल सके
- बालकों के साथ बालिकाओं को भी शिक्षा दिलाना।

सर्व शिक्षा अभियान योजना के विशेषताएँ :

- नए स्कूलों का निर्माण करना, स्कूलों में अतिरिक्त कक्षाएँ, शौचालय, पेयजल सुविधाएँ जोड़ना, स्कूल सुधार अनुदान बनाए रखना।
- बच्चों को मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, ड्रेस प्रदान करना।
- जिन स्कूलों में शिक्षकों की कमी है वहां शिक्षको कि संख्या बढ़ाने पर जोर देना।
- स्कूलों में मौजूदा शिक्षकों के कौशल और क्षमता को बढाने पर विशेष ध्यान देना।
- इसके अंतर्गत बच्चों में मूल्य आधारित शिक्षा के विकास को ध्यान में रखते हुए बचपन की देखभाल और शिक्षा के महत्व को समझने के लिए विशेष ध्यान देना।
- प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के अन्तर्गत प्रारंभ किए गए सर्वशिक्षा अभियान के परिणाम स्वरूप प्राथमिक शिक्षा का कार्य क्षेत्र विस्तृत हुआ है।
- इसके अन्तर्गत शिक्षा के विभिन्न कार्यक्रम तथा योजनाओं को लागू किया गया।
- परिणाम स्वरूप शिक्षा ने अनेकों उपलब्धियाँ को हासिल किया।
- स्कूल दाखिला अनुपात जो वर्ष 1960–61 31.1 : था वर्ष 2003–04 मैं बढ़कर 85 प्रतिशत हो गया।
- वर्ष 2001 तक स्कूल नहीं जाने वाले बच्चों की संख्या करीब 32 करोड़ थी, सर्व शिक्षा अभियान योजना के आने के बाद वर्ष 2005 तक घटकर मात्र 96 लाख के करीब आ गई।
- वर्ष 2001 के बाद लगभग दो लाख नए विद्यालय खोले गए एवं 5 लाख नए शिक्षकों की नियुक्ति की गई।
- भारत सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत योग शिक्षा (योगासन) को भी शामिल किया है।
- इसके लिए कई प्रकार की योजनाएं चालाई जा रही है।
- सर्व शिक्षा अभियान (SSA) के तहत न सिर्फ बच्चों को बल्कि शिक्षकों के प्रशिक्षण पर भी विशेष ध्यान दिया गया।
- सर्व शिक्षा अभियान को MID DAY MEAL योजना से जोड़कर स्कूल में ही दोपहर मे मुफ्तविशेष ध्यान दिया गया।
- सर्व शिक्षा अभियान को MID DAY MEAL योजना से जोड़कर स्कूल में ही दोपहर मे मुफ्त भोजन दिलवाया जाता है।
- इस योजना के तहत विध्यालय के मूल भूत ढांचे और उसके रख रखाव के लिए भी बजट रखा गया ताकि नए बन रहे विध्यालय की तरह उनकी भी रूपरेखा बदली जा सके।

सर्व शिक्षा अभियान योजना का लक्ष्य :

- सर्व शिक्षा अभियान योजना का लक्ष्य प्रारंभिक शिक्षा (प्राथमिक शिक्षा) का सार्वभौमीकरण करता है।
- सर्व शिक्षा अभियान के तहत कौन कौन सी योजनाएँ आती है ?
- सर्व शिक्षा अभियान के तहत ऐसी कई योजनाएं हैं जिन्हें वक्त वक्त पर जोडा गया।

1. पढे भारत बड़े भारत योजना (Padhe Bharat Badhe Bharat) – केन्द्र सरकार ने " पढे भारत बढ़े भारत " योजना सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत शुरू की है । इस योजना अन्तर्गत कक्षा 1 और 2 के बच्चों को लिखना पढ़ना तथा गणित के प्रश्न हल करने के लिए सिखाया जाएगा।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

2. समग्र शिक्षा अभियान योजना – भारत सरकार ने 2018 मे सर्व शिक्षा अभियान के साथ राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान को जोड़ दिया है और इसे समग्र शिक्षा अभियान के नाम से एक नई योजना की शुरुवात की गई।

सर्व शिक्षा अभियान के मुख्य घटक :

- निशुल्क पाठ्य पुस्तकें
- BRC (ब्लॉक रिसोर्स सेंटर)
- CRC (क्लस्टर रिसोर्स सेंटर)
- नागरिक कार्य
- विद्यालय अनुदान
- शिक्षक प्रशिक्षण
- शिक्षक अनुदान
- रिसर्च एंड डेवलपमेंट

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 – शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 एक ऐसा नियम है जिसके अंतर्गत राज्य के सभी वर्गों के 6 से 14 वर्ष के बीच आने वाले सभी बच्चों के लिए मुक्त एवं अनिवार्य गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक शिक्षा सुनिश्चित किया जाता है। यह अधिनियम मूल रूप से वर्ष 2005 के शिक्षा के अधिकार विधायक का संशोधित रूप है। वर्ष 2002 में संविधान के 86वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 21ए के भाग 3 के माध्यम से 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को मुफ्त एवं अनिवार्य शिक्षा उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया था।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम कब लागू हुआ – 4 अगस्त 2009 को यह अधिनियम लोकसभा में पारित किया गया तथा 1 अप्रैल 2010 से पूरे देश में लागू हो गया।

RTE act full form :– Right To Education Act (शिक्षा का अधिकार अधिनियम) है। इसे Right Of Children To Free And Compulsory Education Act 2009. (निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009) के नाम से भी जाना जाता है। RTE Act 2009 भारतीय कानून है, जो 6–14 वर्ष तक की आयु वाले बच्चों को निःशुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा के लिए कानूनी अधिकार देता है।

RTE act 2009 का उद्देश्य :– हमारे संविधान के अनुच्छेद 45 धारा 21। मैं कहा गया है कि, प्रत्येक नागरिक को गरिमामय जीवन जीने का अधिकार है। गरिमामय जीवन तब जिएगा ,जब वह शिक्षित होगा। इसीलिए संविधान में RTE act का खास स्थान दिया गया। जिससे 6 से 14 वर्ष के बच्चे प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त कर सकें, तथा शिक्षित होकर अपने जीवन को गरिमामय ढंग से निर्वाह करें।

RTE act 2009 के उद्देश्यों के संक्षिप्त वर्णन :–

- प्राथमिक शिक्षा को घर–घर पहुंचाना। जिससे 6 से 14 वर्ष के बच्चे को प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त हो सके।
- बाल मजदूरी पर रोक लगाया जाए।
- बेघर बच्चे (सड़क किनारे रहने वाले बच्चे, घर से निकले गए बच्चे, शरणार्थी इत्यादि।) को भी शिक्षा के मुख्यधारा से जोड़ा जाए।

Rights of Persons with Disabilities (RPwD) Act, 2016. – दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय (Ministry of Social Justice and Empowerment) के अंतर्गत आता है. यह दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 1995 का संशोधित नया रूप है. 1995 के दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम में केवल 7 अश्क्ताएँ यानि विकलांगता (Disability) थी. लेकिन 2016 की आरपीडब्लूडी एक्ट के तहत कुल 21 विकलांगता है. पहले की एक्ट में कुल 14 ओर विकलांगता जोड़ दी गयी है। इस एक्ट में बच्चे की शारीरिक दिव्यांग का प्रयोग होता है. इसके तहत 6–18 आयु वर्ष के सभी विकलांग बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दिया जाता है. संशोधित नयी दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 के तहत लगभग 70 से 100 करोड़ लोगों को लाभ प्राप्त होगा.

दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम 2016 की विशेषताएँ –

- दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में कुल 21 विकलांगता (disabilities) हैं।
- इस एक्ट के तहत दिव्यांग लोगों को सरकारी नौकरी में 4 प्रतिशत आरक्षण मिलेगा।
- लेकिन सरकारी नौकरी में आरक्षण पाने के लिए 40 प्रतिशत की विकलांगता होनी चाहिए।
- 6 से 18 आयु वर्ष के सभी विकलांग बच्चों को अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा दिया प्रदान किया जायेगा।
- RPWD Act, 2016 के तहत 70–100 करोड़ विकलांग लोगों को लाभ मिलेगा।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

➢ बच्चे में शारीरिक दिव्यांगता (students with physical disability) का प्रयोग दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 में होता है।

15 जून, 2017 को दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 लागु किया गया. जिसमें कुल 21 विकलांगता को शामिल किया गया. यह ministry of social justice and empowerment के अंतर्गत आता है. आरपीडब्लूडी एक्ट 2016 बच्चे की शारीरिक दिव्यांगता का प्रयोग करता है. इस एक्ट के तहत सभी विकलांग बच्चों को 6–18 आयु वर्ष तक निःशुल्क शिक्षा उपलब्ध होगा. इसके अलावे इस एक्ट के तहत लगभग एक सौ करोड़ दिव्यांग लोगों को लाभ मिलेगा। दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (RPWD act), 2016 में कुल 21 विकलांगता (disabilities) हैं।

1. Blindness (अंधापन)
2. Low Vision (कम दृष्टि)
3. Leprosy Cured Person (कुष्ट रोग से पीड़ित व्यक्ति)
4. Hearing impairment (श्रवण बाधित)
5. Locomotor Disability (गतिक विकलांगता)
6. Dwarfism (बौनापन)
7. Mental illness (मानसिक बीमारी)
8. Intellectual Disability (बौद्धिक विकलांगता)
9. Cerebral Palsy (मस्तिष्क पक्षघात)
10. utism spectrum Disorder (आटिज्म स्पेक्ट्रम डिसऑर्डर)
11. Chronic Neurological condition (क्रोनिक न्यूरोलॉजिकल स्थिति)
12. Muscular Dystrophy (मांसपेशीय दुर्विकास)
13. Specific Learning Disability (विशिष्ट सीखने की अक्षमता)
14. Multiple Sclerosis (मल्टीप्ल स्क्लेरोसिस)
15. Thalassemia (थैलासीमिया)
16. Speech and Language Disability (भाषण और भाषा विकलांगता)
17. Hemophilia (हीमोफिलिया)
18. Sickle sell Disease (सिकल सेल रोग)
19. Multiple Disabilities (एकाधिक विकलांगता)
20. Parkinson*s Disease (पार्किन्संस रोग)
21. Acid attack Victim (एसिड अटैक पीडिता)

Unit :– 4.3 Various Education Commissions since Independence: The University Education Commission (1948–49), the Secondary Education Commission 1952 –53, Kothari Commission report 1964– 66 (स्वतंत्रता के बाद से विभिन्न शिक्षा आयोगः विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49), माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952–53, कोठारी आयोग की रिपोर्ट 1964– 66) – भारत का संविधान (26 नवंबर 1949) :– प्रस्तावना में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सभी को स्थिति और अवसर की समानता का अधिकार है। भारतीय संविधान के निदेशक तत्वों का अनुच्छेद 41 निःशक्तता सहित कुछ मामलों में काम करने, शिक्षा पाने और सार्वजनिक सहायता के अधिकार का समर्थन करता है। इसके अलावा, अनुच्छेद 45 14 साल तक के सभी बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा के प्रावधान के लिए प्रतिबद्ध है। इसके आधार पर, संविधान (86वां संशोधन) अधिनियम, 2002, संसद द्वारा 6–14 वर्ष की आयु के सभी बच्चों की शिक्षा को मौलिक अधिकार बनाते हुए अधिनियमित किया गया है।

The University Education Commission विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) – अन्तर्विश्वविद्यालयीय परिषद तथा केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने भारत सरकार को एक अखिल भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की नियुक्ति का सुझाव दिया जिसके प्रस्ताव में कहा गया– "भारतीय विश्वविद्यालयों के कार्य का मार्गदर्शन करने के लिए भारत सरकार हण्टर कमीशन के आधार पर एक ऐसे आयोग की नियुक्ति करे जो विश्वविद्यालय शिक्षा पर देश की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सुधार और विकास के लिए सुझाव दे।" भारत सरकार ने उपरोक्त प्रस्ताव को स्वीकृत करते हुए 4 नवम्बर 1948 को डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948–49) की नियुक्ति की ।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

आयोग की नियुक्ति का उद्देश्य – आयोग की नियुक्ति का उद्देश्य था– "भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा पर रिपोर्ट प्रस्तुत करना और उन सुधारों एवं विस्तारों के विषय में सुझाव देना था, जो देश की वर्तमान तथा भावी आवश्यकताओं के उपयुक्त होने के लिए वांछनीय हो सके।"

आयोग का जाँच क्षेत्र – आयोग को विश्वविद्यालय शिक्षा से सम्बन्धित निम्नलिखित विषयों पर सुझाव देने को कहा गया–

1.भारत में विश्वविद्यालय शिक्षा तथा शोधकार्य के उद्देश्य निर्धारित करना।

2.विश्वविद्यालय के संगठन, प्रशासन, कार्य–क्षेत्र, वित्तीय साधन, शिक्षण के स्तर, परीक्षा, पाठ्यक्रम, शिक्षा का माध्यम, नैतिक तथा धार्मिक शिक्षण आदि में सुधार के लिए सुझाव देना ।

3.विद्यार्थियों के अनुशासन, संशिक्षणीय कार्य तथा छात्रावास आदि के विषय में सुझाव देना ।

4.शिक्षकों के वेतनमान, योग्यता, सेवा की दशाओं, सुविधाओं, कार्यों आदि के विषय में सुझाव देना।

5.केन्द्रीय विश्वविद्यालयों तथा अन्य अखिल भारतीय शिक्षण संस्थाओं की प्रमुख समस्याओं पर विचार करके सुझाव देना ।

6.विश्वविद्यालयीय शिक्षा से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर विचार करना और उनके सम्बन्ध में सुझाव देना।

आयोग की सिफारिशें तथा सुझाव –

1– विश्वविद्यालय शिक्षा के उद्देश्य– आयोग भारतीय आदर्श, न्याय, स्वतन्त्रता, समानता तथा बन्धुत्व के सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर निम्न उद्देश्य निर्धारित किये–

1) सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासकीय एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में नेतृत्व ग्रहण करने की योग्यता का विकास करना।

(2) भारत की प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता का संरक्षण करना और उसका विकास करना।

(3) प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए विद्यार्थियों में नागरिकता और सामाजिकता के गुणों का विकास करना।

(4) स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व तथा न्याय के आदर्शों का संरक्षण तथा समर्थन करना।

(5) जीवन तथा ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में समन्वय स्थापित करना।

(6) विद्यार्थियों के मानसिक और शारीरिक विकास के साथ–साथ उनका आध्यात्मिक विकास करना।

(7) भारत के प्राचीन आदर्श वसुधैव कुटम्बकम् के अनुसार विद्यार्थियों में विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास करना।

2– शिक्षक वर्ग – आयोग ने शिक्षकों के महत्व पर बल देते हुए कहा कि शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षकों का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा व्यवस्था की सफलता उनकी शैक्षिक योग्यता और चारित्रिक श्रेष्ठता पर निर्भर करती है। आयोग ने अनुभव किया कि शिक्षकों की वर्तमान स्थिति अच्छी नहीं है। शिक्षकों की इस स्थिति के कारण शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। इन कमियों को दूर करने के लिए आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

(1) शिक्षकों को अच्छा वेतन दिया जाये, जिसे आयोग ने श्रेणीवार बांटने की सिफारिश की।

(2) शिक्षकों की पदोन्नति योग्यता के आधार पर

(3) शिक्षकों को भविष्य निधि की उत्तम व्यवस्था।

(4) शिक्षकों के निवास की व्यवस्था ।

(5) शिक्षकों की सेवा निवृत्ति की आयु 60 वर्ष और स्वास्थ्य उत्तम होने पर 64 वर्ष की आयु तक कार्य का अवसर ।

3– अध्यापन स्तर – विश्वविद्यालयों में अध्यापन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आयोग ने निम्नलिखित सुझाव दिये–

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

(1) विश्वविद्यालयों में इण्टर पास विद्यार्थियों को ही प्रवेश दिया जाये।

(2) अच्छे स्तर के इण्टर मीडियट कालेज खोले जाये जिनमें योग्य तथा कुशल अध्यापक नियुक्त किये जाये।

(3) हाईस्कूल तथा इण्टर उत्तीर्ण विद्यार्थियों के लिए पर्याप्त संख्या में व्यावसायिक और टेक्निकल संस्थाएं स्थापित की जाये जिससे विश्वविद्यालय में केवल योग्य और प्रतिभाशाली विद्यार्थी ही प्रवेश ले सकें।

(4) विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या 3000 से अधिक और सम्बद्ध कालेज में 1500 से अधिक न हो ।

(5) विद्यार्थियों को 40 प्रतिशत पर तृतीय 55 प्रतिशत पर द्वितीय तथा 70 प्रतिशत पर प्रथम श्रेणी दी जाये। इसके अतिरिक्त ट्यूटोरियल कार्य, स्नातकोत्तर विचार, गोष्ठियों, पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं की व्यवस्था एवं अभिनवन पाठ्यक्रम की व्यवस्था के सम्बन्ध में सिफारिश की।

4– पाठ्यक्रम – कमीशन ने पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में अग्रलिखित सुझाव दिये – बी० ए० की उपाधि को प्राप्त करने की अवधि तीन वर्ष की होनी चाहिए तथा स्नातकोत्तर उपाधि ' आनर्स' कोर्स के एक वर्ष बाद प्रदान की जानी चाहिए। बी० ए० की परीक्षा में चार विषयों का निर्धारण होना चाहिए जिसमें एक प्रांतीय भाषा अवश्य हो । विश्वविद्यालयों और माध्यमिक कक्षाओं में सामान्य ज्ञान का शिक्षण आवश्यक माना जाये। पाठ्यक्रम विस्तृत और लचीला होना चाहिए जिससे विद्यार्थी अपनी रुचि के अनुसार विषयों का चुनाव कर सकें।

5 – **स्नातकोत्तर प्रशिक्षण तथा शोध** – आयोग ने विश्वविद्यालय में उच्चतम शिक्षा और शोध कार्य की समुचित व्यवस्था करने पर बल दिया और विकास के लिए आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

(1) सभी स्नातकोत्तर कक्षाओं में प्रवेश प्रदान करने के नियम अखिल भारतीय स्तर पर निर्धारित किये जाये।

(2) स्नातकोत्तर कक्षाओं में शिक्षण का संगठन भाषण, गोष्ठियाँ, पुस्तकालय, अध्यापक, संशिक्षिकीय कार्य व प्रयोगशाला कार्य पर आधारित होना चाहिए।

(3) स्नातकोत्तर कक्षाओं के कार्यक्रम में अनुसंधान की विधियों का प्रशिक्षण भी सम्मिलित होना चाहिए।

(4) इस स्तर पर लिखित तथा मौखिक दोनों प्रकार की परीक्षायें होनी चाहिए।

(5) शोध कार्य के विद्यार्थियों का निर्वाचन अखिल भारतीय स्तर पर होना चाहिए।

(6) पी० एच० डी० में शोध कार्य की अविध कम से कम दो वर्ष होनी चाहिए।

6– व्यावसायिक शिक्षा – भारत के लिए व्यावसायिक शिक्षा को आयोग ने अति महत्वपूर्ण माना तथा कृषि, वाणिज्य, शिक्षा व्यवसाय, इन्जीनियरिंग एवं टेक्नालॉजी, कानून तथा चिकित्सा के सम्बन्ध में उपयोगी सिफारिशें कीं।

(क) कृषि शिक्षा – इस विषय में अन्य उन्नत राष्ट्रों का उदाहरण देते हुए तुलनात्मक दृष्टि से भारत की स्थिति पर प्रकाश डाला। कमीशन ने कृषि शिक्षा को प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च सभी स्तरों पर समान महत्व देने, देश में कृषि शिक्षा के प्रसार के लिए वर्तमान कृषि महाविद्यालयों को विकसित करने, नये कृषि महाविद्यालय खोलने के सुझाव दिया।

(ख) वाणिज्य शिक्षा – आयोग ने वाणिज्य शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों के लिए सिफारिश की कि उन्हें 3 या 4 प्रकार के फार्मों में व्यवहारिक ज्ञान दिया जाये, विद्यार्थियों को किसी विशेष शाखा में विशेषज्ञ बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाये तथा एम० काम में कुछ ही विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाये और पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यवहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया जाये।

(ग) शिक्षा व्यवसाय – शिक्षा व्यवसाय के सुधार के लिए आयोग ने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये, जैसे– पाठ्यक्रम में सुधार करके अध्यापन अभ्यास को अधिक महत्व दिया जाये, इसके लिए उपयुक्त विद्यालयों को चुना जाये, स्कूल शिक्षा का पर्याप्त अनुभव रखने वाले अध्यापकों को प्रशिक्षण विद्यालयों में अध्यापक रखा जाये तथा एम०एड० पाठ्यक्रम प्रारम्भ किये जाये और इनमें उन्हीं को प्रवेश दिया जाये जिनका कुछ वर्षों का अध्यापन अनुभव हो।

(घ) इन्जीनियरिंग तथा टेक्नालाजी – इस सम्बन्ध में आयोग ने सिफारिश की कि वर्तमान शिक्षा संस्थाओं में सुधार किया जाये, उच्च शिक्षा के लिए संस्थान स्थापित किये जाये। पाठ्यक्रम में सुधार करके इण्टर मीडिएट के पश्चात् प्राविधिक तथा इंजीनियरिंग पाठ्यक्रमों के प्रथम डिग्री कोर्स की अवधि 4 वर्ष निश्चित की जाये, इसके बाद एक वर्ष का व्यवहारिक अनुभव हो, अनुसंधान की उपयुक्त व्यवस्था की जाये।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

(ङ) कानून शिक्षा – कानून की शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग के प्रमुख सुझाव देश के कानून के कालेजों का पुनः संगठन, तीन वर्ष का पाठ्यक्रम तथा तृतीय वर्ष में व्यवहारिक अनुभव की व्यवस्था, कानून कोर्स के साथ किसी अन्य कोर्स को लेने की सुविवा, अन्य विभागों के अध्यापकों के समान ही कानून के अध्यापकों की नियुक्ति तथा कानून के क्षेत्र में अनुसंधान को प्रोत्साहन आदि–आदि थे।

च) चिकित्सा शिक्षा – किसी भी मेडिकल कालेज में 100 से अधिक छात्रों को प्रवेश न दिया जाये, व्यवसाय में प्रवेश के पूर्व 1 वर्ष से 15 माह तक किसी चिकित्सालय में व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त हो, सार्वजनिक स्वास्थ्य तथा नर्सिंग को विशेष महत्व दिया जाये, भारतीय चिकित्सा पद्धति को महत्व दिया जाये।

7– धार्मिक शिक्षा – आयोग की रिपोर्ट में डॉ० राधाकृष्णन ने स्वयं एक पृथक अध्याय धार्मिक शिक्षा पर लिखा जिसका समर्थन अन्य सदस्यों ने किया। आयोग ने धार्मिक शिक्षा के महत्व पर बल दिया, और भारत के लिए इसे आवश्यक माना। आयोग ने इस सम्बन्ध में सभी शिक्षण संस्थाओं में कुछ समय मौन चिन्तन के बाद शिक्षण कार्य प्रारम्भ करने, स्नातक स्तर की प्रथम कक्षा में महान धार्मिक नेताओं के जीवन चरित्र, द्वितीय वर्ष में संसार के विख्यात धार्मिक ग्रन्थों में सार्वजनिक महत्व के चुने हुए अंश तथा तृतीय वर्ष में धर्म दर्शन की मुख्य समस्याओं का अध्यापन आदि सुझाव दिये।

8– शिक्षा का माध्यम –

(1) संघीय भाषा के रूप में हिन्दी का विकास किया जाये।

(2) राष्ट्रभाषा के लिए देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाये तथा लिपि में विद्यमान दोषों को दूर किया जाये।

(3) उच्च शिक्षा का माध्यम प्रान्तीय भाषाओं को बनाया जाये।

(4) उच्चतर माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाओं का ज्ञान कराया जाये। प्रादेशिक भाषा (मातृ भाषा) संघीय भाषा (राष्ट्र भाषा) और अंग्रेजी ।

9– परीक्षायें – परीक्षाओं के सुधार के लिए आयोग ने सुझाव दिया कि वस्तुनिष्ठ तथा निबन्धात्मक परीक्षा का मिला जुला स्वरूप विकसित किया जाये, कक्षा कार्य के लिए कुल 1/3 अंक सुरक्षित रखे जाये। प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के न्यूनतम अंक 70, 55, 40 प्रतिशत हों। रियायती अंक की प्रथा बन्द कर दी जाये तथा स्नातकोत्तर एवं व्यावसायिक कक्षाओं में मौखिक परीक्षा ली जाये।

10– स्त्री शिक्षा – स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

(अ) यद्यपि अनेक बातों में स्त्री और पुरुष समान ही होते हैं परन्तु दोनों का कार्य क्षेत्र भिन्न होता है अतः स्त्री शिक्षा स्त्रियों के अनुरूप हो और उन्हें ऐसी शिक्षा दी जाये जिससे वे सुहृदय व सुगृहणी बन सकें।

(ब) महिलाओं को अधिक से अधिक शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएं दी जाये।

(स) स्त्रियों के लिए पाठ्यक्रम में गृह अर्थशास्त्र, गृह प्रबन्ध व ललित कलाओं को स्थान दिया जाये।

(द) समान कार्य के लिए महिलाओं को समान वेतन दिया जाये।

(य) विश्वविद्यालय स्तर पर सह शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाये।

11– ग्रामीण विश्वविद्यालय –

(अ) बड़ी संख्या में ग्रामीण महाविद्यालयों की स्थापना की जाये।

(ब) ग्रामीण महाविद्यालयों और ग्रामीण विश्वविद्यालयों की छात्र संख्या क्रमशः 300 तथा 2500 हो ।

(स) ग्रामीण महाविद्यालयों व विश्वविद्यालयों का मुख्य उद्देश्य छात्रों को सामान्य शिक्षा देना तथा वैज्ञानिक रुचियों का विकास करना हो।

(द) कालेजों में पुस्तकालय, प्रयोगशाला तथा क्रीड़ास्थल की समुचित व्यवस्था हो ।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

(य) यहाँ अनुसंधान की व्यवस्था हो ।

(र) अखिल भारतीय स्तर पर ग्रामीण शिक्षा परिषद का गठन किया जाये।

इसके अतिरिक्त वित्तीय व्यवस्था, विश्वविद्यालय शिक्षा का संगठन तथा केन्द्रीय विश्वविद्यालय शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये।

The Secondary Education Commission 1952–53 (माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952–53) :– माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन), 1952–53 का भारतीय शिक्षा में बहुत महत्वपूर्ण योगदान हैं। इसके द्वारा ही आधुनिक भारत की शिक्षा की नींव रखी गयी एवं इस आयोग ने विभिन्न सुझाव दिए ओर इसके कार्यक्षेत्र एव इसके उद्धेश्य भी भारतीय स्थिति को ध्यान में रखते हुए उनका निर्माण किया गया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने सबसे पहले 1948 में विश्वविद्यालय आयोग (राधाकृष्णन कमीशन) का गठन किया। भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की समीक्षा करने और उसका स्तर ऊंचा उठाने के लिए सुझाव देने के लिए ताराचंद्र समिति का निर्माण किया। इस समिति ने भी अपनी रिपोर्ट 1949 में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट के सुझाव पूर्ण नही थे एवं संतोषजनक भी नहीं थे जिस कारण केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने 1951 में केंद्रीय सरकार के सामने माध्यमिक शिक्षा आयोग की नियुक्ति का प्रस्ताव रखा।

सरकार ने 23 सितंबर, 1952 को मद्रास विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति डॉ० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर की अध्यक्षता में "माध्यमिक शिक्षा आयोग" का गठन किया। इस आयोग को अध्यक्ष के नाम पर मुदालियर आयोग (Mudaliar Commission) भी कहते हैं। इस आयोग के सदस्य में डॉ०के०एल० श्रीमाली, श्री के० जी० सेयदेन, श्रीमती हंसा मेहता, श्री जॉन क्राइस्ट ओर श्री केनथ रस्ट विलियम्स के नाम शामिल हैं।

आयोग के निर्माण के उद्देश्य कार्यक्षेत्र (Commission Aims and Commission Workplace Area)

1. भारत के सभी राज्यो में माध्यमिक स्तर पर छात्र अनुशासन की समीक्षा करना और उसमें सुधार के लिए सुझाव देना।

2. भारत के सभी राज्यो की माध्यमिक शिक्षा के प्रशासन एवं संगठन का अध्ययन करना और उसमें सुधार हेतु सुझाव देना।

3. भारत के सभी राज्यो में माध्यमिक शिक्षको के वेतन और सेवाशर्तों का अध्ययन करना एवं उनमे सुधार हेतु अपने सुझाव देना।

4. भारत मे माध्यमिक शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन करना और उनके समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

5. भारत में माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति का अध्ययन करना एवं उनमे सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

6. भारत के माध्यमिक शिक्षा के उद्धेश्य ,पाठ्यक्रम ओर शिक्षा स्तर का अध्ययन करना और उसमे सुधार हेतु सुझाव देना।

7. भारत में माध्यमिक शिक्षा की परीक्षा प्रणाली का अध्ययन करना एवं उसमे सुधार हेतु सुझाव देना।

8. भारत के माध्यमिक शिक्षक के स्तर का अध्ययन करना एवं छात्रो की स्तिथि का अध्ययन कर उसमें सुधार हेतु सुझाव प्रस्तुत करना।

माध्यमिक शिक्षा आयोग का मूल्यांकन एवं गुण–दोष (Evaluation of Secondary Education Commission) – किसी विचार का मूल्यांकन किसी मनको के आधार पर ही संभव हैं। शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसका उपयोग समाज के विकास के लिए किया जाता है। हम इस आयोग का मूल्यांकन उसके गुण–दोषो के आधार पर कर सकते हैं जो निम्नलिखित हैं।

माध्यमिक शिक्षा के गुण (Quality of Secondary Education)

- व्यवस्थित प्रशासनिक ढांचा आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था में केंद्र सरकार की भागीदार पर बल दिया है। केंद्र की तरह राज्यो में भी राज्यीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की स्थापना का सुझाव दिया ओर विद्यालय के नियमित निरीक्षण पर बल दिया।
- पाठयचर्या निर्माण के सिद्धांत आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की पाठयचार्य को वास्तविक, व्यापकता, उपयोगिता ओर सहसंबंध पर विकसित करने का सुझाव दिया।

शिक्षा के उपयुक्त उद्देश्य – छात्रो के व्यक्तित्व विकास से उसका तात्पर्य शस्त्रो के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और चारित्रिक विकास से हैं।

शिक्षको की स्तिथि में सुधार – आयोग ने शिक्षको के प्रशिक्षण पर ध्यान दिया और शिक्षण को प्रभावशाली बनाने के लिए सुझाव दिए।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

स्त्री शिक्षा के सम्बद्ध में सुझाव – आयोग ने बालक– बालिकाओ की शिक्षा में किसी प्रकार की असमानता ना करने में सुझाव दिए है आयोग की दृष्टि से बालिकाओ को बालको की तरह किसी भी शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के दोष (Fault of Secondary Education Commission) – अंग्रेजी के बारे में अस्पष्ट सुझाव– आयोग ने अंग्रेजी के अध्ययन के विषय मे अस्पस्ट सुझाव दिए है एक ओर उसे अनिवार्य विषयो की सूची में रखा है।

व्यवसाध्य बहुदेश्यीय स्कूल – आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों को बहुउद्देश्यीय माध्यमिक विद्यालयों में बदलने का सुझाव दिया है परंतु उसपर होने वाले व्यय का अनुमान लगने का प्रयास करना उचित नही समझा।

बोझिल पाठ्यचर्या – माध्यमिक स्तर पर तीन भाषाएँ ओर सब मिलाकर आठ विषयो का अध्ययन लगता है आयोग बच्चो को एक साथ ही सब पड़ा देना चाहता है।

गैरसरकारी स्कूलों पर अस्पष्ट सुझाव – आयोग ने गैरसरकारी माध्यमिक सुझावों में सुधार के लिए जो सुझाव दिए है वो आज की परिस्थितियों में अनुपयुक्त है।

अनेक प्रकार के पाठ्यक्रम – आयोग ने माध्यमिक स्तर पर 7 वर्गो का निर्माण किया और सातो वर्गों के लिए कुछ विषय समान रखे और भिन्न – भिन्न वर्गो के लिए भिन्न– भिन्न रखे। अब जब पूरे देश मे 1023 शिक्षा संरचना लागू हो गयी है, यह वर्ग विभाजन अर्थहीन हो गया है।

Kothari Commission report 1964 – 66कोठारी आयोग की रिपोर्ट 1964 – 66 :– जिसे भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता के बाद नियुक्त किया गया था। कोठारी आयोग के अध्यक्ष दौलत सिंह कोठारी थे। जिसके तहत शिक्षा प्रणाली को और बेहतर बनाने के लिए खांका तैयार किया जाना, उसे धरातल पर पूरा कराना आदि तय किया गया था। कोठारी आयोग (Kothari Commission) की नियुक्ति उस शिक्षा प्रणाली का आकलन करने के लिए की गई थी, जिसका भारत में पालन किया गया था और शिक्षा के एक राष्ट्रीय पैटर्न और नीतियों और सिद्धांतों की सिफारिश करने के लिए जो सभी स्तरों पर शिक्षा का विकास करेंगे।

हालांकि आयोग को कानूनी और चिकित्सा शिक्षा पर गौर करने और सिफारिशें करने के लिए अधिकृत किया गया था, लेकिन उन्हें आयोग द्वारा बाहर रखा गया था।

- शिक्षा व्यवस्था से जुड़े विभिन्न मुद्दों और समस्याओं का विस्तृत अध्ययन करने के लिए आयोग द्वारा 12 कार्यबलों और 7 कार्य समूहों का गठन किया गया था।
- आयोग द्वारा की गई कुछ सिफारिशों को राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 में शामिल किया गया था।
- कोठारी आयोग का गठन 14 जुलाई 1964 को भारत सरकार द्वारा किया गया था और यह एक तदर्थ आयोग यानी एक अस्थायी आयोग था, जिसका गठन एक विशिष्ट कार्य को करने के लिए किया गया था।
- विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के तत्कालीन अध्यक्ष प्रोफेसर दौलत सिंह कोठारी को इस शैक्षिक आयोग के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया गया था। उनके साथ समिति के कोर ग्रुप में कुल 17 सदस्य थे।
- कोठारी आयोग का एक परामर्श पैनल था जिसमें दुनिया भर के शिक्षा क्षेत्र के 20 विशेषज्ञ शामिल थे। उन्होंने एक बेहतर शिक्षा प्रणाली तैयार करने के लिए आयोग की सहायता की।
- यह भारत का पहला आयोग था जो देश की शिक्षा प्रणाली से व्यापक तरीके से निपटता था।
- आयोग में 12 कार्यबल शामिल थे दृ स्कूली शिक्षाय उच्च शिक्षाय तकनीकी शिक्षाय कृषि शिक्षाय प्रौढ़ शिक्षाय विज्ञान शिक्षा और अनुसंधानय शिक्षक प्रशिक्षण और शिक्षक की स्थितिय छात्र कल्याणय नई तकनीक और तरीकेय जनशक्तिय शैक्षिक प्रशासन और शैक्षिक वित्त।
- टास्क फोर्स के अलावा, इसमें महिला शिक्षा पर सात कार्य समूह भी थेय पिछड़े वर्गों की शिक्षाय स्कूल भवनय स्कूल–सामुदायिक संबंधय सांख्यिकीय पूर्व प्राथमिक शिक्षा और स्कूल पाठ्यक्रम।
- कोठारी आयोग ने अपनी रिपोर्ट 29 जून 1966 को तत्कालीन शिक्षा मंत्री एम.सी.चगला को सौंपी। रिपोर्ट में 4 सेक्शन हैं, जिनमें 19 अध्याय हैं।

Objectives Of Kothari Commission कोठारी आयोग के उद्देश्य – तीसरी पंचवर्षीय योजना के अंत में, कोठारी आयोग (Kothari Commission) नामक शैक्षिक आयोग को निम्नलिखित उद्देश्यों के साथ नियुक्त किया गया था :

- शैक्षिक पुनर्निर्माण के लिए एक नया और अधिक दृढ़ प्रयास शुरू करने की दृष्टि से व्यापक रूप से शैक्षिक प्रणाली की समीक्षा करना।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

- एक शैक्षिक पैटर्न और नीतियां तैयार करना, जो सभी पहलुओं और सभी स्तरों पर शिक्षा का विकास करेगी और भारत सरकार को इसकी सिफारिश करेगी।

कोठारी आयोग (Kothari Commission) द्वारा की गई कुछ प्रमुख सिफारिशों पर नीचे चर्चा की गई है:

- नामांकन प्रतिशत बढ़ाने के लिए इसने 6 से 14 वर्ष के आयु वर्ग के बच्चों के लिए मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की सिफारिश की।
- कोठारी आयोग द्वारा शैक्षिक संरचना के एक नए पैटर्न की सिफारिश की गई थी जिसे आमतौर पर 10़23 के रूप में जाना जाता था। इसके अनुसार देश में शिक्षा की संरचना इस प्रकार होनी चाहिए,

प्री–स्कूल स्टेज : यहां शिक्षा 1 से 3 साल की होनी चाहिए

प्राथमिक शिक्षा का चरण: 7 से 8 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा को निम्न प्राथमिक स्तर के 4 या 5 वर्ष और उच्च प्राथमिक स्तर के 3 या 2 वर्ष में विभाजित किया जाना है।

निम्न माध्यमिक शिक्षा चरण : सामान्य शिक्षा के 3 या 2 वर्ष या व्यावसायिक शिक्षा के 1 से 3 वर्ष।

उच्च माध्यमिक शिक्षा चरण: सामान्य शिक्षा के 2 वर्ष या व्यावसायिक शिक्षा के 1 से 3 वर्ष।

उच्च शिक्षा चरण: पहली डिग्री कोर्स के लिए 3 वर्ष या दूसरी या शोध डिग्री के लिए अलग–अलग अवधि के कोर्स।

इसने दो प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों का सुझाव दिया – उच्च विद्यालय जो 10 वर्ष का कोर्स प्रदान करता है और उच्च माध्यमिक विद्यालय 11 या 12 वर्ष का कोर्स प्रदान करता है।

- कोठारी आयोग (Kothari Commission) ने प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय शिक्षा तक विज्ञान, सामाजिक और राष्ट्रीय सेवा के अध्ययन को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने पर जोर दिया।
- इसने शिक्षा के सभी स्तरों पर क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में उपयोग करने की सिफारिश की।
- देश भर में बच्चों को समान अवसर प्रदान करने के लिए आयोग द्वारा सार्वजनिक शिक्षा की सामान्य स्कूल प्रणाली की सिफारिश की गई थी।
- इसने सिफारिश की कि सामान्य और व्यावसायिक दोनों पाठ्यक्रमों में, निचले और उच्च माध्यमिक स्तरों पर बड़े पैमाने पर अंशकालिक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- आयोग ने प्रवेश की आयु 4 वर्ष से कम न करने पर जोर दिया।
- आयोग ने सुझाव दिया कि उच्च स्तर पर व्यावसायिक और सामान्य शिक्षा के लिए कार्य अनुभव अनिवार्य किया जाना चाहिए।
- शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए कोठारी आयोग ने राष्ट्रव्यापी कार्यक्रमों को लागू करने की सिफारिश की।
- सार्वभौमिक नामांकन और प्रतिधारण प्राप्त करने के लिए, आयोग ने स्कूलों को उनकी संरचना और सुविधाओं में सुधार करने की सिफारिश की। इसने सभी शैक्षणिक संस्थानों में पुस्तकालयों की स्थापना पर भी जोर दिया।
- प्रत्येक राज्य के लिए राज्य शिक्षा विभाग की स्थापना, उस विशेष राज्य की शिक्षा से संबंधित सभी मामलों जैसे विकास, कार्यान्वयन, निरीक्षण आदि से निपटने के लिए।
- इसने स्कूली शिक्षा से संबंधित सभी मामलों पर केंद्र सरकार को सलाह देने के लिए राष्ट्रीय शिक्षा बोर्ड की स्थापना की सिफारिश की।

आयोग ने एक त्रिभाषा सूत्र प्रस्तावित किया, जिसका शिक्षा के निम्न माध्यमिक स्तर पर पालन किया जाना है। उस सूत्र के अनुसार, एक बच्चे को निम्नलिखित भाषाएँ सिखाई जानी चाहिए :

- क्षेत्रीय भाषा या मातृभाषा
- संघ की राष्ट्रीय भाषा अर्थात हिंदी
- कोई एक आधुनिक भारतीय या यूरोपीय भाषा जो न तो कोर्स का हिस्सा है और न ही शिक्षा का माध्यम।
- इसने केंद्र से कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में महिला छात्रों के लिए छात्रवृत्ति कार्यक्रम शुरू करने की सिफारिश की।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

Unit :– 4.4 National Education Policy 1986, Plan of Action 1992 and National Education Policy 2020 (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, कार्य योजना 1992 और राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020) :–

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 :– भारतीय शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए और शिक्षा व्यवस्था को समाज की आवश्यकताओं के अनुसार बनाने के लिए बनाई गई थी। जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 (National Education policy 1968) के दोषों को दूर करना तथा भारतीय शिक्षा संरचना को और अधिक दुरस्त करना था। राजीव गांधी ने कहा था, कि नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (New education policy) 1986 सभी के लिए समान रूप से लाभकारी सिद्ध होगी। प्रतिभाशाली व्यक्तियों के लिए चाहे वह किसी भी समाज से संबंधित क्यों ना हो उन्हें उत्तम और अच्छी शिक्षा प्रदान करने के लिए सर्वोत्तम अवसर दिए जाएंगे। भारतवर्ष जैसे ही आजाद हुआ शिक्षा व्यवस्था दुरुस्त करने के लिए तथा अच्छा बनाने के लिए सबसे पहले विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग 1948 (University Education Commission 1948), जिसे राधाकृष्णन आयोग के नाम से जाना जाता है, की स्थापना की गई। इसके बाद माध्यमिक शिक्षा आयोग 1952 (Secondary Education Commission 1952) की स्थापना हुई।

इस प्रकार इन आयोगों ने भारत की शिक्षा व्यवस्था सुधारने के लिए एक नीति प्रस्तावित की थी। जिसे भारतीय शिक्षा नीति 1968 के नाम से जाना जाता है। इसे लागू किया गया किन्तु यह ठीक प्रकार से कार्यन्वित ना हो पायी और इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में विभिन्न प्रकार के दोष पाए गए। अतः इन आयोगों ने भारतीय शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप उसे बनाने के लिए प्रयास किए और अगस्त 1985 में भारत सरकार के द्वारा एक परिपत्र शिक्षा में चुनौती प्रस्तुत किया गया। जिसमें कहा गया था, कि कोई भी शिक्षा नीति तब तक सफल नहीं हो सकती है, जब तक उस शिक्षा नीति को अच्छी तरह से ठोस रूप से क्रियान्वित ना किया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की विशेषताएँ Features of National Education policy 1986

राष्ट्रव्यापी शिक्षा संरचना Nationwide Education Structure -

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की सबसे प्रमुख विशेषता संपूर्ण देश में एक प्रकार की शिक्षा संरचना होगी, अर्थात या शिक्षा संरचना 10̤23 पर आधारित होगी।
- जिसमें पहले 5 वर्ष प्राथमिक स्तर इसके बाद 3 वर्ष उच्च प्राथमिक स्तर 2 वर्ष माध्यमिक स्तर 2 वर्ष इंटरमीडिएट स्तर 3 वर्ष का स्नातक स्तर होगा।

शिक्षा में समानता Equality in education - शिक्षा सभी के लिए सामान होगी। महिलाओं को अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों,विकलांगों और अल्पसंख्यकों को जो शैक्षिक असामानता थी, वह समाप्त कर दी जाएगी। प्रत्येक राज्य बिना किसी धर्म, लिंग, जाति और वर्ग के भेदभाव के बिना सभी वर्गों को समान शिक्षा का अवसर प्रदान करेगा।

राष्ट्रव्यापी पाठ्यक्रम की संरचना Nationwide Curriculum Structure – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में सभी राज्यों के लिए एक समान पाठ्यक्रम की सिफारिश की गई। जो राष्ट्रीय मूल्यों और राष्ट्रीय एकता को विकसित करेगा और देश की संस्कृति के प्रति चेतना भी जागृत होगी। जबकि पाठ्यक्रम निर्माण में राज्य और केंद्र दोनों के पास अधिकार सुरक्षित रहेंगे।

प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण Universalization of primary education - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की विशेषता रही कि सन 1990 तक 6 वर्ष से 11 वर्ष तक के आयु वाले सभी बालक बालिकाओं तथा 1995 तक 11 वर्ष 14 वर्ष के सभी बालक बालिकाओं को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जाएगी। प्रत्येक राज्य यह सुनिश्चित करेगा तथा इसे कठोरता से लागू भी करेगा।

महिला शिक्षा Woman Education - सभी क्षेत्रों में महिलाओं को समानता का अधिकार दिलाने का प्रयास प्राथमिक शिक्षा तथा अन्य विद्यालयों के अतिरिक्त शिक्षक के रूप में महिलाओं की नियुक्ति विभिन्न स्थानों पर तकनीकी और व्यवसायिक (technical and commercial) शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित की जाएगी। जिससे पुरुष और महिला दोनों में किसी प्रकार का भेदभाव ना हो सके।

केंद्र सरकार की भागीदारी Central government involvement - राज्य सरकार के साथ ही केंद्र सरकार का भी उत्तरदायित्व शिक्षा के गुणात्मक सुधार के लिए उल्लेखनीय होगा।

व्यवसायिक शिक्षा Business studies - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (National Education policy) में.2 स्तर पर व्यवसायिक शिक्षा पाठ्यक्रम समाहित किया जाएगा। अर्थात शिक्षा को रोजगार से जोड़ने का प्रयास शिक्षा नीति में किया जाएगा। जिससे कौशल युक्त जनशक्ति तैयार हो सके तथा उच्च स्तर की शिक्षा में भीड़ को बहुत ही कम की जा सके।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड Operation black board - ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के अंतर्गत ऐसे विद्यालय जिन विद्यालयों के पास ना तो ठीक प्रकार से भवन है और ना ही शैक्षिक उपकरण हैं। सभी प्रकार की जरूरत संबंधी सामग्री और आवश्यक उपकरण प्रदान किए जाएंगे। उनके लिए भवनों की मरम्मत तथा नए भवन बनाए जाएंगे। जहाँ पर शिक्षकों की आवश्यकता है, वहाँ पर महिला शिक्षक भी नियुक्त की जाएंगी। महिलाओं को विकास कार्यक्रम के रूप में लिया जाएगा।

पिछड़े वर्गों के लिए शिक्षा Education for backward classes - जो बच्चे पिछड़े वर्ग के अंतर्गत आते हैं और वह अशिक्षित हैं। उनके लिए छात्रावासों और आश्रमों की व्यवस्था की जाएगी। जहाँ पर उन्हें निशुल्क भोजन पाठक पुस्तकें प्रदान की जाएंगी। जो बच्चे आदिवासी क्षेत्रों से आते हैं, उनके लिए जीवन शैली के अनुसार पाठ्यक्रम की व्यवस्था होगी। आदिवासी जनजाति के बच्चे अपनी भाषा और संस्कृति की रक्षा के लिए विशिष्ट विद्यालय में प्रवेश दिया जायेगा।

अध्यापक प्रशिक्षण Teacher training -राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में अध्यापक को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का मुख्य भाग माना गया है। क्योंकि यही नागरिकों, समाज और देश के निर्माणकर्ता होते हैं। इसलिए अध्यापकों की सेवा शर्तों में सुधार किया जाएगा, उनके वेतनमान बढ़ाए जाएंगे, पदोन्नति का अवसर प्राप्त होगा। अध्यापकों का स्थानांतरण, प्रशिक्षण व्यवसायिक आचार संहिता आदि नियमों में परिवर्तन कर उन्हें आकर्षक बनाया जाएगा। शिक्षा की गुणवत्ता में वृद्धि की जाएगी।

युवा साक्षरता तथा सतत शिक्षा Youth Literacy and Continuing Education - इस नीति में 15 से 35 वर्ष के युवा लोगों के लिए साक्षरता कार्यक्रम की व्यवस्था की जाएगी,जिसका उद्देश्य उच्च साक्षरता दर प्राप्त करना तथा निरक्षरता को दूर करना होगा। रेडियो, दूरदर्शन तथा फिल्मों के माध्यम से शिक्षा का प्रचार प्रसार किया जाएगा। पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित किए जाएंगे।

नवोदय विद्यालय Navodaya Vidyalaya - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत नवोदय विद्यालय स्थापित किए जाएंगे। जिन्हें फेस पेंटिंग स्कूल या गति निर्धारक स्कूल भी कहा जाता है। देश के प्रत्येक जिले में एक नवोदय विद्यालय और मॉडल स्कूल स्थापित होगा। जो पूरी तरह से आवासीय और निशुल्क शिक्षा की व्यवस्था प्रदान करेगा। इस विद्यालय में ग्रामीण और पहाड़ी क्षेत्रों के प्रतिभाशाली बालकों को पढ़ने की सुविधा दी जाएगी। जिसमें अनुसूचित जाति और जनजातियों के लिए विशेष आरक्षण होगा। इन विद्यालयों में 20 : बालकों को एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में भी भेजा जा सकता है, जिससे राष्ट्रीय एकता, सहयोग सद्भावना, बंधुत्व की भावना का समुचित विकास भी होगा।

खुला विश्वविद्यालय और दूरस्थ अध्ययन Open University and Distance Education - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत खुला विश्वविद्यालय (Open University) दूरस्थ अध्ययन (Distance education) की भी व्यवस्था की गई है.

- इसके लिए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय खुला विश्वविद्यालय को अधिक मजबूत किया जाएगा, तथा खुले विश्वविद्यालय स्थापित किए जाएंगे।
- ऐसे विश्वविद्यालय जो कर्मचारी कहीं पर कार्यरत हैं, और जिनकी शिक्षा बीच में ही छूट गई है के लिए बहुत उपयोगी होंगे। लोग घर पर ही पत्राचार के माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर पाएंगे।
- दिल्ली, हैदराबाद, कोटा,नालंदा नाशिक कई जगह पर विश्वविद्यालय खोले गए हैं। जहाँ पर विद्यार्थी सुविधा अनुसार पढ़कर परीक्षा उत्तीर्ण कर सकता है।

परीक्षा प्रणाली में सुधार Improvement in examination syste -

- इस शिक्षा नीति में परीक्षा मूल्यांकन का तरीका बदल दिया गया। इस नीति के अंतर्गत अब परीक्षार्थियों को ग्रेड दिए जाएंगे। ग्रेड सतत मूल्यांकन के बाद दिए जाएंगे।
- इसमें शैक्षिक के अतिरिक्त अन्य पक्षों का भी मूल्यांकन होगा. जिसमें विभिन्न प्रकार की सामयिक परीक्षाएँ निर्धारित होगी और विद्यार्थी अपने अध्ययन के अनुसार सम्मिलित होगा।

डिग्रियों को नौकरी से अलग करना Lay off degrees - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के अंतर्गत ऐसे पदों के लिए जहाँ डिग्री का होना अथवा ना होना कोई महत्व नहीं रखता है, वहाँ से धीरे–धीरे डिग्री और उपाधि की अनिवार्यता समाप्त हो जाएगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 क्या है

- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का मूल्यांकन करने के लिए सरकार ने 7 मई 1990 को एक समिति का गठन किया जिसकी अध्यक्षता आचार्य राममूर्ति ने की।
- समिति ने 26 दिसंबर 1990 को ही अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत कर दी। जब केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की बैठक 1 मार्च 1991 को हुई तब रिपोर्ट पर विचार विमर्श किया गया।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

- किंतु केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के अधिकतर सदस्य इस समीक्षा से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 का मूल्यांकन करने के लिए एक बार फिर से समिति का गठन 1992 किया
- इस बार इस समिति का अध्यक्ष आंध्र प्रदेश सरकार के मुख्यमंत्री जनार्दन रेडी को बनाया गया। समिति के द्वारा 1986 राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मूल्यांकन उसकी कार्य योजना का अध्ययन करके अपनी रिपोर्ट को जनवरी 1992 में सौंप दिया। उसके बाद केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने उस रिपोर्ट का अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में बहुत ही कम संशोधन की आवश्यकता है।

इस प्रकार से भारत सरकार (Indian Govt) ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 को ही संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 में परिवर्तित करके लागू कर दिया।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 की सिफारिशें Recommendations of National Policy on Education 1992 – राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कई प्रकार के संशोधन कर दिए गए। इसके पश्चात संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 प्रस्तुत की गई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 की विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैः–

राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था National education system -

- संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 में सबसे पहला मुद्दा शिक्षा व्यवस्था था कि संपूर्ण देश में शैक्षिक संरचना (Educational structure) किस प्रकार की होनी चाहिए।
- इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 के अंतर्गत सारे देश में एक ही प्रकार की शिक्षा व्यवस्था (Education system) 10़23 को लागू किया गया।
- जिसमें पहले 5 वर्ष प्रारंभिक स्तर के अगले 3 वर्ष उच्च प्राथमिक स्तर के तथा इसके पश्चात के 2 वर्ष हाई स्कूल तथा अगले 2 वर्ष हायर सेकेंडरी तथा अगले 3 वर्ष स्नातक स्तर के होंगे यही देश के हर एक राज्य में शिक्षा संरचना लागू की जाएगी।
- साक्षरता मिशन के माध्यम से निरक्षरता को दूर करने के लिए प्रोढ़ शिक्षा का प्रावधान भी इस शिक्षा नीति में रखा गया। 15 से 35 आयु वर्ग के समस्त लोगों को साक्षरता अभियान के तहत जोड़ दिया जायेगा और विभिन्न साधनों के द्वारा केंद्रीय सरकार और राज्य सरकार के साथ राजनीतिक दलों विभिन्न प्रकार के सरकारी और गैर सरकारी संगठनों जनसंचार माध्यम कई प्रकार की शैक्षिक संस्थाओं शिक्षकों छात्रों और युवाओं को साक्षरता मिशन में तत्परता दिखाने के लिए प्रेरित किया जायेगा। जिससे साक्षरता कार्यात्मक ज्ञान कौशल तथा शिक्षार्थियों में सामाजिक एवं आर्थिक वास्तविकता की समझ उत्पन्न हो सके तथा यह एक बड़ा वर्ग है जो निरक्षरता के अंधेरे में है, वह भी साक्षरता के उजियारे में अपनी चमक बिखेर सके।
- मजदूर वर्ग के लोगों को अशिक्षित लोगों को विभिन्न प्रकार के संगठन में कार्य करने वाले सरकारी गैर सरकारी श्रमिकों को शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
- देश में सरकारी और गैर सरकारी पुस्तकालयों और वाचनालयों को अधिक सुधार तथा विकसित किया जाना चाहिए।
- दूरस्थ शिक्षा (Distance education) के कार्यक्रम होंगे, जन शिक्षा, समूह शिक्षा, रेडिओ, दूरदर्शन, तथा फिल्मो के माध्यम से दी जाएगी।

प्रारंभिक शिक्षा Primary education - राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अंतर्गत प्रारंभिक शिक्षा में निम्न बातों पर विशेष बल दिया गया हैः–

- सार्वभौमिक प्रवेश और नामांकन, 14 वर्ष के आयु वाले सभी छात्र–छात्राओं का सार्वभौमिक टिकाव, छात्र–छात्राओं को शिक्षा ग्रहण करने के लिए आवश्यक स्तर प्राप्त कराने के लिए तथा छात्र–छात्राओं को योग्य बनाने के लिए शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार।

विद्यालय में सुविधाएँ Facilities in the school – सभी प्रकार के प्राथमिक विद्यालयों में आवश्यक सुविधाओं की व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए। ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड के द्वारा प्रत्येक विद्यालय में 3 बड़े कमरे जो सभी प्रकार के मौसम में उपयोग करने लायक हों, कमरों में ब्लैकबोर्ड, मानचित्र और चार्ट के साथ खिलौने हो, प्राथमिक स्तर के बच्चों को सीखने के लिए आवश्यक सामग्री उपलब्ध हो, इसके साथ ही पुस्तकालय की भी व्यवस्था होनी चाहिए। ऐसे विद्यालयों में कम से कम एक विद्यालय में 3 शिक्षक अवश्य होंगे छात्र–छात्राओं की संख्या शीघ्र बढ़ती है तो और शिक्षकों की नियुक्ति होगी। भविष्य में चुने गए शिक्षकों में 50ः महिला शिक्षिकाएँ होंगी। जबकि विद्यालय भवनों के निर्माण में और मरम्मत में जवाहर योजना की निधियों का उपयोग किया जाएगा।

अनौपचारिक शिक्षा Informal education - औपचारिक शिक्षा उन छात्र–छात्राओं के लिए होगी जो छात्र–छात्राएँ स्कूल छोड़ चुके हैं, या फिर स्कूल रहित क्षेत्रों में रह रहे हैं, या वे छात्र छात्राएँ जो कोई भी काम करने के कारण विद्यालय नहीं आ सकते, उन छात्र–छात्राओं के क्षेत्रों

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

में अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम विस्तृत किए जाएंगे। अनौपचारिक शिक्षा के चलाने की जिम्मेदारी स्वयं सेवी संस्थाओं के साथ ही पंचायती राज संस्थाओं की होगी। इन संस्थाओं को समय के साथ धन और शिक्षण सामग्री की भी व्यवस्था की जाएगी।

एक संकल्प A resolution - एक संकल्प के तहत यह सुनिश्चित किया जाना होगा कि भारत का 21 वीं सदी में पहुँचने से पूर्व ही 14 वर्ष तक के सभी छात्र छात्राओं को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जा सकेगी।

माध्यमिक शिक्षा Secondary education - माध्यमिक शिक्षा में विशेषकर विज्ञान, वाणिज्य व्यावसायिक धाराओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों की लड़कियों के नामांकन पर अधिक बल दिया जाएगा और उन्हें विस्तृत किया जाएगा। इसके लिए माध्यमिक शिक्षा परिषद पुनर्गठित की जाएगी। माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता को विकसित किया जाएगा। माध्यमिक स्तर पर कंप्यूटर साक्षरता (Computer literacy) भी प्रदान की जाएगी जिससे बच्चे आने वाले समय में तकनीकी रूप से भी शिक्षित हो सकेंगे।

खुला विश्वविद्यालय और दूरस्थ अध्ययन Open University and Distance Learning - इसके अंतर्गत 1985 में स्थापित किया गया इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (प्दकपतं ळंदकीप छंजपवदंस व्मद न्दपअमतेपजल) को और अधिक मजबूत किया जाएगा। तथा राज्यों में खुले विश्वविद्यालयों को सहायता प्रदान होगी। जबकि राष्ट्रीय खुले विद्यालयों को भी अधिक मजबूत किया जाएगा और उन्हें सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी।

नवोदय विद्यालय की स्थापना Establishment of Navodaya Vidyalaya - राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1992 के अंतर्गत गरीब प्रतिभाशाली छात्रों के लिए नवोदय विद्यालय की स्थापना की जाएगी। जिसमें छात्रों के लिए शिक्षा के साथ ही रहने खाने की निशुल्क व्यवस्था की जाएगी। इन विद्यालयों में छात्र कक्षा पांचवी के बाद प्रवेश ले सकेंगे तथा कक्षा आठवीं पास करने के बाद अन्य राज्यों में शिक्षा ग्रहण करने के लिए जा सकेंगे जिससे उनमें राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित होगी।

डिग्री को नौकरी से अलग Degree out of job - मापन और मूल्यांकन में व्यापक सुधार किया जाएगा तथा डिग्री को नौकरी से अलग रखा जाएगा। छोटी–मोटी नौकरियों के लिए डिग्री का होना आवश्यक नहीं होगा।

योग कार्यक्रम Yoga program - शारीरिक और मानसिक विकास के लिए योग शिक्षा (Yoga Education) पर भी विशेष बल दिया जाएगा। सभी प्रकार के विद्यालयों में योग शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण कार्यक्रम में योग शिक्षक और पाठ्यक्रम की भी व्यवस्था होगी।

मूल्यांकन प्रक्रिया और परीक्षा में सुधार Evaluation process and exam improvement - परीक्षण निकायों के मार्गदर्शन के लिए तथा उन्हें सहायता देने के लिए परीक्षा सुधार ढांचा विशेष प्रकार से तैयार किया जाएगा। इसमें विशेष परिस्थितियों में एक ढांचे को अंगीकृत किया जाएगा और परिवर्तित करने की भी स्वतंत्रता प्रदान की जाएगी।

शिकायतों का निराकरण Redressal of complaints - राष्ट्रीय स्तर पर और राज्य स्तर पर नए ढंग से प्रशासनिक न्यायाधिकारों के उपरांत शैक्षिक न्यायाधिकार भी स्थापित होंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 National Education Policy 2020 – शिक्षा से ही हमारे व्यक्तित्व और कृतित्व का निर्माण होता है। इसी को देखते हुये सरकार द्वारा शिक्षा–नीतियां लाई जाती हैं। वस्तुतः भारतीय संविधान के नीति निर्देशक तत्वों के तहत छः से चौदह वर्ष की आयु के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का प्रावधान है। राष्ट्रीय शिक्षा–नीति साल 1986 में सरकार द्वारा लायी गयी थी। फिर 1992 में इसमें कुछ आवश्यक संशोधन किये गये और अब 29 जुलाई, 2020 को एक बार फिर केंद्र सरकार द्वारा भारत की नई शिक्षा–नीति लागू की गई है। इसमें मानव–संसाधन विकास मंत्रालय के अंतर्गत आने वाला शिक्षा–विभाग अब स्वतंत्र रूप से शिक्षा–मंत्रालय के तहत आयेगा। बता दें कि मंत्रालय द्वारा 2019 से ही लोगों से नई शिक्षा नीति के बारे में सुझाव लिया जाना शुरू कर दिया गया था। यह नई शिक्षा नीति प्रख्यात अंतरिक्ष वैज्ञानिक के. कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता वाली समिति की रिपोर्ट पर आधारित है।

नई शिक्षा नीति के प्रमुख बदलाव Major changes of new education policy - इसके तहत केंद्र सरकार ने करीब तीन दशक पुरानी शिक्षा–व्यवस्था को बदलते हुये 10+2 वाला 'सिस्टम' हटाकर उसमें 5+3+3+4 जोड़ दिया है। अब तक सरकारी स्कूलों में पढ़ाई का एक से ही शुरू मानी जाती थी, पर अब पहले के तीन दर्जे प्री–प्राइमरी कहलायेंगे, और उसके बाद कक्षा एक और दो। यानी अगर सीधे कहें तो अब पांचवीं कक्षा तक प्री–स्कूल, फिर छः से आठ तक मिडिल और आठवीं से बारह दर्जे की पढ़ाई हाईस्कूल कही जायेगी इसके बाद स्नातक या ग्रेजुएशन स्तर की पढ़ाई होगी। जिसमें आठवीं कक्षा से ही विद्यार्थियों को अपने मनपसंद विषय को चुनने की आजादी होगी और हर डिग्री चार सालों की होगी। नई शिक्षा नीति के तहत अब विद्यार्थियों को शुरू से ही तीन भाषाओं की शिक्षा मिलेगी। इसमें मातृभाषा में अध्ययन पर भी विशेष जोर दिया गया है। इसके साथ ही नई शिक्षा नीति के तहत अब विद्यार्थियों को विषय चुनने की स्वतंत्रता अब कहीं ज्यादा बेहतर होगी। यानी छात्रों

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

को विज्ञान वर्ग कला या वाणिज्य आदि से संबंधित विषयों को चुनने की पूरी आजादी होगी। सभी स्नातक स्तर की पढ़ाई में विषयों को 'मेजर' और 'माइनर' के रूप में चुना जा सकेगा। इसका मतलब है कि विज्ञान–वर्ग का छात्र विज्ञान के विषयों को 'मेजर' और साथ ही संगीत आदि कला–वर्ग के विषयों को 'माइनर' विषय के तौर पर चुन सकेगा।,

क्रियान्वयन Implementation – विश्वविद्यालय अनुदान आयोग यानी 'यूजीसी' के अध्यक्ष प्रोफेसर धीरेंद्र पाल सिंह के मुताबिक इस नई शिक्षा नीति के कार्यान्वयन को रफ्तार देने के लिये केंद्र द्वारा राज्य सरकारों और विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपतियों से लगातार वार्ता जारी है। साथ ही इसके लिये अलग–अलग स्तर पर नये सिरे से एक नियामक ढांचा बनाने का काम भी प्रगति पर है। नई शिक्षा नीति में चिकित्सीय व कानूनी शिक्षा को छोड़कर देश के सभी उच्च शिक्षा संस्थानों को 'भारतीय उच्च शिक्षा परिषद' नामक एकल नियामक तंत्र के अंतर्गत लाने की परिकल्पना की गई है। विभिन्न शिक्षण–संस्थानों में इसी अकादमिक सत्र से नई शिक्षा नीति से संबंधित पहल शुरू हो चुकी है। प्रयास है कि जुलाई, 2022 से शुरू होने वाले शैक्षिक–सत्र से नई शिक्षा नीति पूरे देश में लागू हो जाये। फिलहाल कर्नाटक और मध्य प्रदेश में यह नई शिक्षा नीति–2020 लागू की जा चुकी है।

पृष्ठभूमि Background - गौरतलब है कि सन् 1948 में जाने–माने शिक्षाविद् डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में पहली बार विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग गठित हुआ था और तब से ही राष्ट्रीय शिक्षा नीति पर काम जारी है। फिर कोठारी आयोग की रिपोर्ट के आधार पर 1968 में इंदिरा गांधी सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महत्वपूर्ण बदलाव किये। आगे चलकर राजीव गांधी के प्रधानमंत्री रहते अगस्त, सन् 1985 में 'शिक्षा की चुनौती' नामक एक दस्तावेज तैयार किया गया, जिसमें देश भर के तमाम बुद्धिजीवियों के शिक्षा संबंधी विचार शामिल थे और इसी आधार पर 1986 में केंद्र सरकार द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा नीति लाई गई। जिसमें पूरे देश के लिये एकसमान शैक्षिक–प्रणाली को अंगीकार किया गया। इसके तहत अधिकांश राज्यों ने 1023 की शिक्षा–प्रणाली अपनाई। जो अब तक चली आ रही थी। 1992 में इसमें कुछ आवश्यक संशोधन भी किये गये और अब जुलाई, 2020 में मोदी–सरकार द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की गई है, जिसमें उक्त शैक्षिक ढांचे में महत्वपूर्ण बदलाव लाया गया है।

नई शिक्षा नीति, 2020 की कुछ खास बातें Some highlights of the New Education Policy, 2020 – इस नई शिक्षा नीति के तहत शिक्षा पर व्यय जीडीपी यानी देश के सकल घरेलू उत्पाद का छः प्रतिशत किया जाना प्रस्तावित है, जो फिलहाल साढ़े चार प्रतिशत के लगभग है। इसके अलावा सन् 2030 तक सकल नामांकन अनुपात को सौ फीसदी तक लाने का लक्ष्य भी है। नई शिक्षा नीति में संगीत, खेल और योग जैसे विषयों को सहायक पाठ्यक्रम की बजाय मुख्य पाठ्यक्रम में ही शामिल किया जायेगा। साथ ही नई शिक्षा नीति में शोध से संबंधित एमफिल की व्यवस्था समाप्त कर दी गई है, और इसके लिये छात्र अब तीन वर्षीय स्नातक और दो वर्षीय स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम को पूरा करने के बाद पीएचडी का कोर्स कर सकते हैं। नई शिक्षा नीति में एक खास बात ये है कि इसमें शिक्षकों के प्रशिक्षण पर भी विशेष बल दिया गया है। इसके लिये शिक्षक–प्रशिक्षण व ऐसे अन्य कार्यक्रमों को कॉलेज या विश्वविद्यालय स्तर पर शामिल किया जायेगा। इसके अतिरिक्त स्कूलों–कॉलेजों को मनमाने तरीके से फीस वसूलने पर रोक लगाई जायेगी। नई शिक्षा नीति के तहत यह कोशिश की गई है कि विद्यार्थी रटने की बजाय समझकर पढ़ने की आदत डालें। साथ ही उनमें लिखने की कला भी विकसित हो। इसके अतिरिक्त अब तक उच्च शिक्षा के शिक्षार्थियों द्वारा किसी कारण से पढ़ाई बीच में ही छोड़ देने पर उन्हें कुछ नहीं हासिल हो पाता था, पर नई शिक्षा नीति के तहत पहले साल की पढ़ाई पूरी करने पर सर्टीफिकेट यानी प्रमाण–पत्र, दूसरे वर्ष डिप्लोमा और तीन साल बाद डिग्री दिये जाने का प्रावधान किया गया है।

Unit :– 4.5 Equality of opportunity in educational institution and inclusive education at different levels: elementary, secondary and higher education (शैक्षणिक संस्थान में अवसर की समानता और विभिन्न में समावेशी शिक्षा स्तरः प्रारंभिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा) – यह सुनिश्चित करना समाज का नैतिक दायित्व है कि सभी बच्चों को पर्याप्त शिक्षा मिले जो उन्हें समाज में योगदान देने वाले वयस्क बनने के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करे। यह समाज के हित में भी है क्योंकि अगर कुछ बच्चों को अच्छी शिक्षा नहीं मिलती है तो यह एक सामाजिक बर्बादी है। इसका मतलब है कि मानव प्रतिभा जो समाज में योगदान दे सकती है, उसका पोषण नहीं किया जाता है। सभी छात्रों में प्रतिभा होती है जो औपचारिक शिक्षा के माध्यम से बढ़ती है उन प्रतिभाओं को विकसित करने में विफल रहने से, समाज संवर्धन और प्रगति के अवसरों को खो देता है। इसके अलावा सामाजिक बर्बादी खराब शिक्षा की दीर्घकालिक सामाजिक और वित्तीय लागतों से प्राप्त होती है। अपर्याप्त शिक्षा कम आय और खराब आर्थिक विकास, कम कर राजस्व, और स्वास्थ्य देखभाल, सामाजिक सुरक्षा और बढ़ते अपराध की उच्च लागत के रूप में बड़ी सार्वजनिक और सामाजिक लागत की ओर ले जाती है।

शैक्षिक समानता शिक्षा में निष्पक्षता, न्याय और निष्पक्षता समानता का अध्ययन और उपलब्धि है)। इक्विटी शब्द का अर्थ है विशिष्ट व्यक्तियों की विशिष्ट आवश्यकताओं को समायोजित करना और उन्हें पूरा करना। इसका मतलब है कि यह सुनिश्चित करना कि सभी की सीखने की जरूरतें पूरी हों शैक्षिक समानता प्रत्येक छात्र के लिए संसाधनों, अवसरों, उपचार और सफलता के वितरण में निष्पक्षता के सिद्धांतों पर आधारित है।

स्कूल में समान अवसर यह सुनिश्चित करने के बारे में है कि सभी बच्चों और वयस्कों के पास स्कूल के सभी पहलुओं में पहुंच और परिणाम के मामले में अवसर की समानता है और वर्तमान और भविष्य के लिए उनके जीवन की संभावनाएं उनकी भागीदारी के दौरान होने वाली किसी भी चीज से बाधित या विकृत नहीं होती हैं। शिक्षा की प्रक्रिया में, लेकिन वास्तव में उन्हें अपनी क्षमता के पूरे दायरे को प्राप्त करने की अनुमति देने के लिए विस्तृत किया जाता है। यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि समान पहुंच आवश्यक रूप से परिणाम की समानता की ओर नहीं ले जाती है।

समान अवसर हमारी समानताओं और हमारी विविधता को व्यक्तियों और समूहों के रूप में पहचानता है और मनाता है। यह मानता है कि सभी व्यक्तियों को इस तरह से पोषित होने का आंतरिक अधिकार है कि वे अपनी पूरी क्षमता तक पहुंचने में सक्षम हों। समान अवसर यह स्वीकार करता है कि जब हम सभी के पास योगदान करने के लिए कुछ मूल्य होता है, तो हम सभी एक स्तर के खेल मैदान पर शुरू नहीं करते हैं। नतीजतन कुछ व्यक्ति अपनी क्षमता तक पहुंचने के अपने प्रयासों में वंचित रह जाएंगे। हम एक संगठन के रूप में उनकी व्यक्तिगत उपलब्धि में अंतर करने और अधिकतम करने के लिए कड़ी मेहनत करेंगे।

समानता के मुद्दे हम सभी पर लागू होते हैं, लेकिन ऐसे कई लोग हैं जिनके बारे में समान अवसर की चिंता अक्सर औपचारिक रूप से व्यक्त होती है। ऐसे समूहों को अक्सर नस्ल, लिंग, लिंग और अक्षमता के संदर्भ में या उनकी आयु, वर्ग, धर्म या शैक्षिक उपलब्धि के संदर्भ में संदर्भित किया जाता है। ये शब्द अपने आप में समस्याग्रस्त हो सकते हैं क्योंकि वे सामाजिक निर्माण (''मानव निर्मित'') हैं, लेकिन संदर्भ के फ्रेम के रूप में भी उपयोग हो सकते हैं।

समान अवसर शिक्षा की पूरी प्रक्रिया को कवर करते हैं लेकिन विशेष रूप से बहुसंस्कृतिवाद, नस्लवाद विरोधी, विकलांगता, जातीयता लिंग और ट्रांस–लिंग, कामुकता और सामाजिक आर्थिक नुकसान के मुद्दों को शामिल करते हैं। असमानता का मुकाबला करने की रणनीतियों में आत्म–सम्मान और आत्म–मूल्य की भावना, स्कूल संगठन, पाठ्यक्रम सामग्री और वितरण, अनुशासन, विशेष शैक्षिक और या अंग्रेजी को एक अतिरिक्त भाषा की जरूरत के रूप में, अंडर–उपलब्धि, और निर्माण के मुद्दों से निपटने वाले शामिल हैं। स्कूल समुदाय के भीतर सामाजिक पैड संबंध। समान अवसर क्षमता को अनलॉक करने के लिए संरचनाएं और प्रतियोगिताएं बनाने के बारे में है।

1 अक्टूबर 2010 को नया समानता कानून लागू हुआ। समानता अधिनियम 2010 ने सभी मौजूदा समानता कानूनों को बदल दिया, जिसमें 1 विकलांगता भेदभाव अधिनियम और लिंग भेदभाव अधिनियम शामिल हैं। इसका मतलब यह है कि तीन समानता कर्तव्यों वाले स्कूल परिचित हैं (रेस समानता, विकलांगता समानता और लिंग समानता) को सार्वजनिक क्षेत्र की समानता से बदल दिया गया है जो 6 अप्रैल 2011 को लागू हुआ था।

पीएसईबी के तहत, स्कूलों को सामान्य कर्तव्य और इसके तीन ''घटकों'' के साथ–साथ विशिष्टताओं के एक सेट का अनुपालन करने के लिए उचित सम्मान दिखाना चाहिए। बीज के तीन घटक हैं –

- भेदभाव, उत्पीड़न, उत्पीड़न और इस अधिनियम द्वारा या इसके तहत निषिद्ध किसी भी अन्य आचरण को खत्म करना।
- प्रासंगिक संरक्षित विशेषता साझा करने वाले व्यक्तियों के बीच अवसर की अग्रिम समानताऔर जो लोग इसे साझा नहीं करते हैं।
- प्रासंगिक संरक्षित विशेषताओं को साझा करने वाले व्यक्तियों और इसे साझा नहीं करने वाले व्यक्तियों के बीच अच्छे संबंधों को बढ़ावा देना

इसका मतलब है कि स्कूलों को अभी भी भेदभाव से निपटने, अवसर की समानता को बढ़ावा देने और अच्छे संबंधों को बढ़ावा देने के लिए सक्रिय कदम उठाने की आवश्यकता है स्पष्ट घटनाएं जो असमानता में योगदान करती हैं उनमें नस्लवाद, लिंगवाद, क्लासिकवाद या किसी भी प्रकार का भेदभाव शामिल है। शारीरिक हिंसा, मौखिक दुर्व्यवहार, अपमान, नाम पुकारना, चुटकुलेध्उपहास, धमकियां, बदमाशी और भित्तिचित्र इसके कुछ प्रकटीकरण हैं। किसी व्यक्ति के मूल्य या आत्म सम्मान की भावना को इस तरह से कम करना अस्वीकार्य है।

समान अवसर नीति को लागू करें और उसकी निगरानी करें, और यह हमारा नवीनतम अपडेट है, नॉर्टन रोड को सद्भाव के अपने उत्कृष्ट रिकॉर्ड पर गर्व है, जो हमारे स्थायी बहिष्कार और बहुत ही सामान्य बहिष्कार, बदमाशी और नस्लवादी घटना रिकॉर्ड द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

Unit 5: School Administration

Unit :– 5.1 Meaning, definition and principles of School Administration and School Organization (स्कूल प्रशासन और स्कूल संगठन का अर्थ, परिभाषा और सिद्धांत) :– स्कूल संगठन दो शब्दों का मेल है, स्कूल और संगठन के माध्यम से। विद्यालय संगठन का अर्थ समझने के लिए विद्यालय और संगठन के अर्थ को अलग–अलग समझना आवश्यक है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

जॉन डी0 वी0 (John Dewey) :– ''विद्यालय एक विशेष वातावरण है जहाँ बच्चे के वांछित विकास को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से जीवन की एक निश्चित गुणवत्ता और कुछ प्रकार की गतिविधियाँ प्रदान की जाती हैं''।

संगठन का अर्थ और परिभाषा (Meaning and Definition of Organization) :– संगठन का अर्थ है अस्तित्व में लाना। संगठन का सीधा संबंध लोगों द्वारा किए गए नियोजन और प्रयासों से होता है। यह एक ऐसा माध्यम है, जिसके माध्यम से प्रशासन द्वारा परिकल्पित लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है। प्रशासन पूर्व–कार्यकारी चरण है जबकि वास्तविक निष्पादन संगठनात्मक स्तर पर होता है या होना चाहिए। यह सामान्य लक्ष्य का नेतृत्व करने के लिए संगठन का गठन करने वाले व्यक्तियों के समूह की समन्वित गतिविधियाँ हैं। संगठन शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया गया है:

जे. बी. सियर्स (J- B- Sears) :– ''यह काम करने के लिए एक मशीन है। यह मुख्य रूप से विचारों की सामग्री, अवधारणाओं, प्रतीकों, रूपों, नियमों, सिद्धांतों या इनमें से अधिक के संयोजन के व्यक्तियों से बना हो सकता है। मशीन स्वचालित रूप से काम कर सकती है या इसका संचालन हो सकता है मानव निर्णय और इच्छा के अधीन ''।

डब्ल्यू एच रायबर्न (W- H- Ryburn) :– 'संगठन का सीधा सा अर्थ है व्यावहारिक उपाय जो हम यह सुनिश्चित करने के लिए करते हैं कि हम जिस कार्य प्रणाली का उपयोग करते हैं वह हमारे लक्ष्यों को पूरा करने में सबसे बड़ी संभव सहायता होगी और हमारे बच्चों को सबसे बड़ा लाभ होगा। ''

स्कूल संगठन के लक्ष्य और उद्देश्य(Aims and Objectives of School Organization) :– विषय वस्तु और शिक्षण पद्धति दोनों में ज्ञान के तेजी से विस्तार का स्कूल संगठन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। हालांकि शिक्षकों को पेशेवर रूप से सक्षम माना जाता है, यह मान लेना उचित नहीं है कि उन्हें स्कूल संगठन के माध्यम से अत्यधिक विशिष्ट सहायता प्रणाली की आवश्यकता नहीं है। स्कूल संगठन, एक विशेष सहायता प्रणाली होने के कारण निम्नलिखित लक्ष्य और उद्देश्य हैं –

1.. **अध्ययन–अध्यापन के लिये उचित वातावरण** – किसी भी विद्यालय का पहला उद्देश्य यह होना चाहिये कि विद्यार्थियों को शिक्षा प्राप्त करने के लिये अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराया जाये। शिक्षा के लिये विद्यालय पाठ्यक्रम होता है। पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कक्षा में अध्ययन एवं अध्यापन के साथ ही सभी आवश्यक सहगामी क्रियाओं का आयोजन भी होता है। प्रबन्धकों को यह देखना चाहिये कि वे सभी आवश्यक भौतिक एवं मानव संसाधनों की व्यवस्था करें, जिससे उत्कृष्ट कोटि की शिक्षा विद्यार्थियों को दी जा सके। इसका अभिप्राय है कि विद्यालय में विषय के प्रशिक्षित विद्वान सुविधाजनक कक्षा–कक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ, खेल के मैदान तथा छात्रावास इन सभी की समुचित व्यवस्था होनी चाहिये, जिससे विद्यार्थी सही अर्थ में शिक्षा प्राप्त करते हुए परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त कर सकें।

2.मानवीय तथा भौतिक साधनों का उचित प्रयोग – जब मानवीय एवं भौतिक संसाधनों की व्यवस्था हो जाती है तब उद्देश्य यह होना चाहिये कि इन भौतिक एवं मानवीय संसाधनों में समन्वय स्थापित किया जाय। इसका अर्थ यह है कि अलग खेलने के मैदान हैं तो बालक खेल के मैदान पर खेलते दिखायी देने चाहिये। यदि पुस्तकालय और प्रयोगशालाएँ हैं तो यह देखना चाहिये कि विद्यार्थी पुस्तकालय का पूरा–पूरा लाभ उठायें और प्रयोगशालाओं में प्रयोग करते दिखायी दें। विभिन्न कक्षाओं में पर्याप्त संख्या में विद्यार्थी हों। यह सन्तुलन शिक्षा प्रबन्धन का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है।

3.शिक्षकों तथा कर्मचारियों में आत्म–विश्वास – विद्यालय प्रबन्धन वही उत्कृष्ट है जहाँ विद्यालय में सेवारत विभिन्न श्रेणियों के कर्मचारी परस्पर प्रेम एवं विश्वास की भावना रखें, विद्यार्थियों से स्वाभाविक रूप से स्नेह करें तथा प्रबन्धकों के प्रति उनमें विश्वास हो। यह मानकर चलना चाहिये कि वही विद्यालय अपने उद्देश्यों में सफल होगा, जहाँ सेवारत कर्मचारी एवं शिक्षक समर्पण एवं सेवा की भावना से कार्य करेंगे और यह तभी सम्भव होगा जब कर्मचारी वर्ग को यह विश्वास हो जाय कि प्रबन्धक उनकी समस्याओं के प्रति संवेदनशील है। सेवारत शिक्षकों एवं कर्मचारियों में इस प्रकार की भावना विकसित होना सफल विद्यालय प्रबन्धन का एक अनिवार्य उद्देश्य है।

4. जटिल शैक्षिक कार्य को सरल बनाना – प्रबन्धकों को यह भी देखना चाहिये कि विद्यालय में कार्यरत कर्मचारी एवं शिक्षक अनुत्पादक श्रम में अपना समय एवं शक्ति नष्ट नहीं करें। वे कार्य भी करें, उसमें उन्हें सफलता भी नहीं मिले और जटिलता से जूझते रहें। यह स्थिति विद्यालय में उत्पन्न न हो, यह देखना भी प्रबन्धक का दायित्व होता है।

5. **निरन्तर मूल्यांकन को प्रभावी बनाना–प्रबन्धन कार्यों का समय** – समय पर मूल्यांकन अवश्य किया जाना चाहिये। मूल्यांकन जहाँ अपनी उपलब्धियों को रेखांकित करता है वहीं अपनी सीमाओं एवं कमियों की ओर भी संकेत करता है। इससे आगे के कार्यक्रम एवं भावी योजनाएँ बनाने में सहायता मिलती है। साथ ही इस सम्बन्ध में भी विचार किया जा सकता है कि जो संसाधन उपलब्ध कराये गये हैं वे विद्यार्थियों को विद्याध्ययन के लिये किस सीमा तक अनुकूल एवं उपयुक्त वातावरण प्रदान करने में सफल रहे हैं?

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

6. प्रयोग तथा अनुसन्धान के लिये अवसर–विद्यालय – प्रबन्धकों को यह भी देखना चाहिये कि जिन शिक्षकों का चयन किया गया है तथा जो विद्यालय में सेवारत हैं उन्हें अपनी व्यावसायिक वृद्धि के समुचित अवसर प्राप्त हों। इसके लिये विशेष कार्यक्रम आयोजित किये जाने चाहिये। प्रबन्धन के क्षेत्र में अधिक उत्कृष्ट व्यवस्था के लिये प्रबन्धकों को प्रयोग करने चाहिये तथा इस क्षेत्र में नयी दिशाओं की खोज करने की भी चेष्टा करनी चाहिये।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विद्यालय प्रबन्धकों को कुछ आवश्यक क्रियाएँ एवं सुनियोजित कदम उठाने चाहिये। इन क्रियाओं को निम्नलिखित प्रकार से समझा जा सकता है –

1.संसाधनों का नियोजन – विद्यालय प्रबन्धन से अभिप्राय ही भौतिक एवं मानवीय संसाधनों को विद्यालय में पर्याप्त मात्रा में इस दृष्टि से उपलब्ध कराना है कि विद्यार्थी को अपेक्षित शिक्षा प्राप्त करने हेतु अनुकूल वातावरण मिल सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए समय,शक्ति एवं धन की व्यवस्था करना ही नियोजन है। यह व्यवस्था प्रबन्धकों को भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की पर्याप्त मात्रा में व्यवस्था करनी है। शिक्षा के ऐसी एवं इतनी पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिये, जिससे शैक्षिक प्रगति में सफलता मिल सके।

2. संसाधनों का संगठन – साधनों के नियोजन के बाद उनके संगठन की ओर ध्यान देना चाहिये। जिन भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर, समय, शक्ति एवं धन की उपलब्धता के आधार पर नियोजन किया गया है, उन संसाधनों का विद्यार्थियों द्वारा पर्याप्त रूप उपयोग किया जाना आवश्यक है। इसके साथ यह भी देखा जाना आवश्यक है कि दोनों साधनों में समन्वय रहे।

3. संसाधनों का समन्वय – विद्यालयों में मानवीय एवं भौतिक संसाधनों का नियोजन एवं संगठन करने का उद्देश्य तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक इन दोनों प्रकार के संसाधनों में समन्वय नहीं हो। संसाधनों में समन्वय से तात्पर्य यह है कि मानवीय संसाधन भौतिक संसाधनों के अधिक से अधिक उपयोग के अवसर प्राप्त करने में सहायता दें तथा विद्यालय को एक ऐसा केन्द्र बनाने में सहायता दें जिसका उपयोग स्थानीय समुदाय भी कर सके।

4. संसाधनों का नियन्त्रण – शिक्षा प्रबन्धकों को यह भी देखना चाहिये कि जो संसाधन विद्यालय में उपलब्ध हैं उन पर पूरा नियन्त्रण हो। पूरा नियन्त्रण रखने से तात्पर्य यह है कि प्रबन्धक देखें कि सभी साधनों का सही रूप से उपयोग हो। न तो इन साधनो का दुरुपयोग हो, न ऐसी स्थिति हो कि इनका उपयोग ही न होता हो अर्थात् जुटाये गये सभी संसाधन निरर्थक प्रमाणित होते हो। यह नियन्त्रण भी सफल विद्यालय प्रबन्धन के लिये आवश्यक है। अन्त में विद्यालय प्रबन्धों को निरन्तर इसका मूल्यांकन करना चाहिये कि जो संसाधन नियोजित किये गये हैं, जिन्हें संगठित किया गया है, जिस प्रकार साधनों में परस्पर समन्वय स्थापित किया गया है तथा नियन्त्रण रखा गया है, उससे लक्ष्यों को प्राप्त करने में कहाँ तक सफलता मिली है और यदि कोई कमी रह गयी है तो वह क्या है तथा क्यों है?

विद्यालय संगठन के सिद्धान्त (PRINCIPLES OF SCHOOL ORGANIZATION) – शिक्षा के उद्देश्यों की अधिकतम प्राप्ति हेतु संगठन का कुछ सुविचारित सिद्धान्तों पर आधारित होना परमावश्यक है। अनेक विद्वानों ने विद्यालय संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनमें से कुछ प्रमुख एवं मूलभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं–

(1) बाल केन्द्रित (Child Centred) – विद्यालय का मुख्य उद्देश्य बालक का सर्वोन्मुखी विकास करना है। इस दृष्टि से संगठन बाल केन्द्रित होना चाहिए। यह संगठन ऐसा हो जिसके द्वारा बालकों की विभिन्न योग्यताओं, अभिरुचियों, शक्तियों, संवेगों एवं मूल प्रवृत्तियों को स्वस्थ दिशा में विकसित किया जा सके। संगठन द्वारा विद्यालय में ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जाना चाहिए जिसमें बालक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं चारित्रिक गुणों को सरलता से प्राप्त कर सकें। विद्यालय की विभिन्न क्रियाओं को उनके विकास की प्रकृति एवं गति, उनकी वैयक्तिक विभिन्नताओं, उनके पूर्व अनुभवों तथा उनके सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को दृष्टिगत रखकर व्यवस्थित किया जाना चाहिए। ऐसा करके प्रत्येक बालक को अपना सर्वोत्तम विकास करने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जा सकेंगी।

2) समाज केन्द्रित (Society Centred) – दृसंगठन बाल केन्द्रित होने के साथ–साथ समाज केन्द्रित भी होना चाहिए, क्योंकि शिक्षा का उद्देश्य बालकों को समाज का एक सक्रिय, उपयोगी एवं कुशल सदस्य बनाना है। संगठन में बालकों की विकास सम्बन्धी क्रियाओं के आयोजन के साथ–साथ समाज की प्रगति हेतु उचित व्यवस्था का होना भी परमावश्यक है। संगठन के द्वारा समाज में गत्यात्मक उद्देश्य को भी अभिव्यक्त किया जाना चाहिए, जिससे समाज भावी प्रगति की ओर अग्रसर हो सके। अतः विद्यालय संगठन बालक की विकासात्मक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए भी समाज के आदर्शों, आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, मूल्यों, संस्कृति, आदि पर आधारित होना चाहिए। उदाहरणार्थ–

- भारत एक कृषि प्रधान देश है, परन्तु वह फिर भी अपने देश की खाद्य सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असफल रहा है। अनाज के अधिक उत्पादन के लिए कृषि को वैज्ञानिक तथा तकनीकी आधार देना आवश्यक हो गया। इसलिए विद्यालय में कृषि की आधुनिक विधियों के शिक्षण पर बल दिया जा रहा है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

- आधुनिक माँग के अनुसार देश का औद्योगीकरण भी करना परमावश्यक है। इस दृष्टि से विद्यालयों में आज विज्ञान, प्रौद्योगिकी (Technology), इंजीनियरिंग, आदि विषयों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जा रहा है।
- आधुनिक माँग के अनुसार आज शिक्षा को व्यवसाय या पेशा केन्द्रित (Job–oriented) बनाने पर बल दिया जा रहा है जिससे शिक्षित बेरोजगारी को समाप्त किया जा सके।

(3) लोकतन्त्रीय सिद्धान्त (Democratic Principle) – जनतन्त्र की सफलता हमारे विद्यालयों पर हो निर्भर हैं। ये विद्यालय ही हैं जो जनतन्त्र के स्तम्भों अर्थात् भावी नागरिकों का निर्माण करते हैं। बालकों में आदर्श नागरिकों के गुणों का विकास विद्यालय की व्यवस्था, क्रिया–कलाप एवं परम्पराओं के माध्यम से किया जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि विद्यालय का संगठन लोकन्त्रीय सिद्धान्तों एवं प्रक्रियाओं के अनुसार हो। लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों के अनुसार संगठन एवं प्रशासन करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है–

1. वैयक्तिक भेदों को ध्यान में रखकर विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं की व्यवस्था की जाए।

2. अवसर की समानता प्रदान करने के लिए व्यवस्था की जाए।

3. बालक की स्वतन्त्रता को स्वीकार किया जाए। दूसरे शब्दों में छात्रों को स्वतन्त्रता प्रदान की जाए।

4. शिक्षकों को व्यावसायिक स्वतन्त्रता का उपयोग करने के लिए अवसर प्रदान किये जाएँ।

5. विद्यालयों में पाठ्यचर्या तथा शिक्षण विधियों को लचीले सिद्धान्त के अनुकूल व्यवस्थित किया जाए।

6. विद्यालयीय संगठन एवं प्रशासन विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त पर आधारित किया जाए।

7. विद्यालय की सम्पूर्ण व्यवस्था को सहयोग के सिद्धान्त पर आधारित किया जाए।

(4) उपलब्ध साधनों के अधिकतम उपभोग का सिद्धान्त (Principle of Maximum Utilization of Available Sources) – जैसाकि हम देख चुके हैं अभीष्ट शैक्षिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विद्यालय संगठन के अन्तर्गत उपलब्ध साधनों का सर्वोत्तम उपयोग होना चाहिए। इस दृष्टि से संगठन द्वारा विभिन्न मानवीय एवं भौतिक तत्वों में अधिक–से–अधिक सामंजस्य स्थापित किया जाना चाहिए जिससे इनका सर्वोत्तम उपयोग करके शक्ति, समय एवं धन का अधिकतम सदुपयोग हो सके। शिक्षकों की नियुक्ति तथा विद्यालय में प्रयुक्त होने वाली समस्त सामग्री शिक्षण विधियाँ, पाठ्यक्रम, पाठ्यक्रम–सहगामी क्रियाएँ पाठ्य पुस्तकें व अन्य साज–सज्जा बालक तथा समाज की आवश्यकताओं व सामर्थ्य को ध्यान में रखकर निर्धारित की जाएँ, अन्यथा उनका अपव्यय होगा तथा संगठन से पूर्ण लाभ प्राप्त नहीं हो पायेगा।

(5) लोच का सिद्धान्त (Principle of Flexibility) – मानव प्रकृति एवं समाज तथा उसको आवश्यकताएँ परिवर्तनशील हैं। जब विद्यालय का लक्ष्य बालक एवं समाज का उचित दिशाओं में विकास करना है तो इनकी बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुकूल विद्यालय संगठन में समय–समय पर परिवर्तन होना भी नितान्त आवश्यक है। अतः विद्यालय संगठन में लोच अथवा परिवर्तनशीलता का गुण होना चाहिए। यदि संगठन में दृढ़ता एवं एकरूपता आ गई तो यह बालक एवं स्थानीय समाज की माँगों एवं आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ रहेगा।

Unit :– 5.2 Organization of Special School and Inclusive School (विशेष स्कूल और समावेशी स्कूल का संगठन) :–

विशेष स्कूल :– ऐसे संस्थान हैं जो बच्चों और किशोरों के जीवन में सुधार लाने के लिए समर्पित हैं, बाल विकास संबंधी अक्षमताओं, सीखने संबंधी विकारों और रोगी देखभाल, विशेष शिक्षा, अनुसंधान और पेशेवर प्रशिक्षण के माध्यम से व्यवहार संबंधी समस्याएं। ज्यादातर विशेष स्कूल विशेष रूप से डिजाइन, स्टाफ और संसाधन वाले होंगे। अतिरिक्त जरूरतों वाले बच्चों के लिए उपयुक्त विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिए। आम तौर पर, विशेष स्कूलों में भाग लेने वाले छात्र मुख्यधारा के स्कूलों में किसी भी कक्षा में शामिल नहीं होते हैं। विशेष स्कूल छात्रों की विशिष्ट आवश्यकताओं को संबोधित करते हुए व्यक्तिगत शिक्षा प्रदान करते हैं।

निःशक्त बच्चे या तो विशेष स्कूल में पढ़ते हैं या नियमित मुख्यधारा के स्कूल में। इन बच्चों के लिए यह संभव है कि जब वे चाहें तो एक विशेष से नियमित मुख्यधारा के स्कूल में जा सकते हैं। भारत में 1880 के दशक में मुख्यधारा की शिक्षा से बाहर विकलांग बच्चों के लिए शिक्षा की एक अलग प्रणाली के रूप में विशेष शिक्षा का विकास हुआ। यह इस धारणा पर आधारित था कि विकलांग बच्चों की कुछ विशेष जरूरतें होती हैं जिन्हें मुख्यधारा में पूरा नहीं किया जा सकता है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

विशेष आवश्यकता वाले स्कूल नियमित स्कूलों से इस मायने में अलग होते हैं कि वे शिक्षा की चुनौतियों वाले छात्रों की पूर्ति करते हैं। वे विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों के लिए सही सहायता प्रदान करने के लिए डिजाइन किए गए हैं, कर्मचारी हैं, और उनके पास संसाधन हैं, उनके पास शिक्षा के लिए ''एक–आकार–फिट–सब'' दृष्टिकोण नहीं है। इसके बजाय, वे प्रत्येक छात्र की जरूरतों के अनूठे संयोजन को पूरा करने के लिए अनुकूलित प्रोग्रामिंग प्रदान करते हैं। इसमें न केवल सीखना शामिल है, बल्कि सामाजिक और भावनात्मक जरूरतें भी शामिल हैं। विशेष आवश्यकता वाले स्कूल और कार्यक्रम इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए व्यापक दृष्टिकोण और सेवाएं प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, वे पेशकश कर सकते हैं –

- व्यक्तिगत शिक्षा
- छोटी कक्षाएं
- निम्न शिक्षक–से–छात्र अनुपात।
- विशेष रूप से प्रशिक्षित शिक्षक।
- स्व – निहित कक्षाएँ
- संसाधन कक्ष शिक्षण कार्यक्रम शैक्षणिक और मनोवैज्ञानिक परामर्श
- शिक्षण सहायक सामग्री

''विशेष शिक्षा कार्यक्रमों को प्लेसमेंट की एक श्रृंखला के माध्यम से वितरित किया जा सकता है। छात्रों को मूल्यांकन और निर्देश से लाभ हो सकता है जो आवश्यकतानुसार व्यक्तिगत, सटीक, स्पष्ट और गहन है।

समावेशी शिक्षा :– समावेशी शिक्षा को अंग्रेजी में inclusive education कहा जाता है जिसका अर्थ होता है सामान्य तथा विशिष्ट बालक बिना किसी भेदभाव के एक ही विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करना।

स्टीफन एवं ब्लैकहर्ट के अनुसार :– ''शिक्षा के मुख्य धारा का अर्थ बालकों की सामान्य कक्षाओं में शिक्षण व्यवस्था करना है या समान अवसर मनोवैज्ञानिक सोच पर आधारित है जो व्यक्तिगत योजना के द्वारा उपयुक्त सामाजिक मानवीकरण और अधिगम को बढ़ावा देती है।''

समावेशी शिक्षा का क्षेत्र (scope of inclusive education) – समावेशी शिक्षा शारीरिक एवं मानसिक रूप से बाधित सभी बच्चों के लिए है। यह ऐसे प्रत्येक बालक के लिए शिक्षा एवं सामान्य शिक्षक की बात करता है। जो इससे लाभ प्राप्त करने के योग्य है अतः समावेशी शिक्षा का कार्य क्षेत्र ऐसे सभी बालकों के बीच अपनी पहुंच बनाना है एवं उन्हें अधिगम प्रदान कर सामान्य जीवन यापन हेतु अग्रसर करना है।

१. शारीरिक रूप से बाधित बालक

२. मानसिक रूप से बाद बालक

३. सामाजिक रुप से बाधितधविचलित बालक

४. शैक्षिक रूप से बाधित बालक

Unit :– 5.3 Code and conduct of teacher, duties and responsibilities of the head of school (शिक्षक का कोड और आचरण, स्कूल के प्रमुख के कर्तव्य और जिम्मेदारियां) :–

शिक्षक की संहिता और आचरण (Code and conduct of teacher) :– सभी शिक्षकों से अपने सार्वजनिक और निजी जीवन में अनुकरणीय होने की अपेक्षा की जाती है। उनकी वफादारी। समर्पण की भावना और चरित्र की सत्यनिष्ठा हर समय उनकी देखभाल के लिए युवा समिति की प्रेरणा होनी चाहिए। शिक्षक सावधानी और प्रतिबद्धता के साथ अपने कर्तव्यों का पालन करेगा, उपस्थिति में समय का पाबंद होगा और कक्षा के संबंध में कर्तव्यपरायण होगा और स्कूल या बोर्ड के प्रमुख द्वारा उसे सौंपे गए कर्तव्यों से संबंधित किसी भी अन्य कार्य के लिए भी। वह स्कूल के नियमों और विनियमों का पालन करेगा और वैध आदेशों का पालन करेगा और गठित अधिकारियों के प्रति उचित सम्मान भी दिखाएगा।

(Duties and responsibilities of the head of school) विद्यालय के प्रधानाध्यापक के कर्तव्य एवं दायित्व :–

प्रत्येक शिक्षण – संस्था का एक अध्यक्ष होता है जिसको उपकुलपति, प्राचार्य या प्रधानाध यापक के नाम से सम्बोधित करते हैं। वह उस संस्था के प्रशासकीय कर्मचारी वर्ग का प्रधान होता है। वह विद्यालय रूपी परिवार का मुखिया होता है जो सब लोगों को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करता है। शिक्षा–संस्था की सफलता बहुत कुछ उसकी कार्य–कुशलता, दक्षता एवं व्यक्तिगत कप्तान का स्थान होता है।" पत्थर होता है।" गणों

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

पर निर्भर करती है। वह समाज की तथा उन योजनाओं को क्रियान्वित करने के लिए आवश्यक गुणा एवं निर्देश देता है। वह विद्यालय का केन्द्र बिन्दु होता है। साथ ही वह विद्यालय और समाज के बीच सामंजस्य स्थापित करने का भी प्रयास करता है।

शैक्षिक प्रशासक के कार्य / उत्तरदायित्व –

(1) प्रशासकीय कार्य – प्रधानाध्यापक के प्रशासकीय कार्य के अन्तर्गत उसके प्रशासन, कार्यालय तथा प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य आते हैं जिनका विभाजन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं–

- **पाठ्यक्रम सम्बन्धी कार्य का संचालन करना** – इसके अन्तर्गत कक्षा कार्य की व्यवस्था करना, शिक्षकों के बीच विषय वितरण करना, निर्धारित पाठ्यक्रम में से उपयुक्त, उपयोगी एवं सुविधाजनक पाठ्यक्रम का चुनाव करना, कक्षाओं का निरीक्षण करना आदि कार्य आते हैं।
- पाठ्यसहगामी क्रियाओं की व्यवस्था करना।
- छात्रावास का प्रबन्ध करना।
- विद्यालय के कार्यालय की व्यवस्था तथा देखरेख करना।
- भवन तथा फर्नीचर आदि की व्यवस्था करना।
- परीक्षाओं की व्यवस्था एवं संचालन करना।

(2) अध्यापन कार्य – प्रधानाध्यापक सर्वप्रथम अध्यापक है अतः उसका मुख्य कार्य है– अध्यापन करना। प्रायः प्रधानाध्यापक प्रशासकीय कार्यों में इतना व्यस्त हो जाते हैं कि वो अध्यापन कार्य बिल्कुल छोड़ देते हैं परन्तु ऐसा करना उचित नहीं है। प्रत्येक प्रधानाध्यापक को किसी न किसी विषय को अवश्य पढ़ाना चाहिए। ऐसा करने पर एक तो वह शिक्षकों का मार्ग–दर्शन कर सकेगा तथा साथ ही विद्यार्थियों के सम्पर्क में भी आ सकेगा और उनके विषय में जानकारी रख सकेगा।

3) नियोजन कार्य – प्रशासक का एक और महत्वपूर्ण कार्य है योजना बनाना। नियोजन के बिना विद्यालय में अव्यवस्था का फैलना स्वाभाविक है। अतः प्रधानाध्यापक का यह कर्त्तव्य है कि को सत्र प्रारम्भ होना के पूर्व ही विद्यालय की समय सारिणी (Time Table) का, विभिन्न कक्षाओं एवं विषयों में छात्र प्रवेश नीति का, शिक्षकों में शिक्षण कार्य के आवंटन का एवं शिक्षण सामग्री आदि के वितरण का नियोजन करे जिससे की विद्यालय का कार्य सुचारू रूप से चल सके।

(4) निरीक्षण कार्य – प्रधानाध्यापक के ऊपर सम्पूर्ण विद्यालय की व्यवस्था एवं निरीक्षण बालकों के खेलकूद, पुस्तकालय, प्रयोगशाला एवं छात्रावास आदि सभी का निरीक्षण करना चाहिए। करने का उत्तरदायित्व होता है। उसे केवल शिक्षक कार्य का ही निरीक्षण नहीं करना चाहिए वरन् विद्यालयका कोई भी अंगऐसा नहीं होना चाहिए जो प्रधानाध्यापक के निरीक्षण में न आए। निरीक्षण का प्रमुख उद्देश्य केवल दोषारोपण न होकर सहायता, प्रोत्साहन एवं निर्देशन देना होना चाहिए।

5) अनुशासनात्मक कार्य – विद्यालय के कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में शिक्षक, विद्यार्थी एवं अनय कर्मचारी सभी अनुशासन पूर्ण हो। इस प्रकार विद्यालय में अनुशासन बनाए रखना भी प्रधानाध्यापक का एक महत्वपूर्ण कार्य है। में कार्य सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। प्रधानाध्यापक को यह देखना चाहिए कि शिक्षक एवं अनुशासन के अभाव में शिक्षण कार्य तथा पाठ्यसहगामी क्रियाओं का संचालन आदि कोई भी विद्यार्थी सभी अच्छी प्रकार से कार्य करें और अनुशासन में रहें।

(6) सामाजिक उत्तरदायित्व – प्रधानाध्यापक को विद्यालय के भिन्न–भिन्न कार्यक्रमों द्वारा सामाजिक संस्कृति का संरक्षण तथा उसे आगे आने वाली पीढ़ी को हस्तान्तरित करना चाहिए। हम सभी संस्कृति पर निर्भर हैं। संस्कृति के बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते और संस्कृति के अन्तर्गत आते हैं हमारे जीवन मूल्य, हमारी भाषा, हमारा साहित्य, हमारे नैतिक आदर्श आदि। प्रधानाध यापक का कर्तव्य है कि वो विद्यालय में ऐसी क्रियाओं का आयोजन करें जिनसे हमारे विद्यार्थी अधिक से अधिक मात्रा में सांस्कृतिक मूल्यों को अपना सकें। इस प्रकार विद्यालय और समाज भी एक दूसरे क निकट आ सकेंगे और उनमें समायोजन स्थापित हो सकेगा।

7) सम्पर्क सम्बन्धी कार्य – विभिन्न लोगों के साथ सम्पर्क बनाए रखना भी प्रधानाध यापक का कर्तव्य है। सबसे पहले उसे शिक्षकों से सम्पर्क रखना चाहिए क्योंकि उसे अध्यापकों से कार्य लेना होता है तथा उनके सहयोग पर ही उसी सफलता निर्भर करती है। केवली शिक्षकों से ही सम्पर्क रखकर प्रधानाध्यापक का कर्तव्य पूरा नहीं हो जाता। उसे विद्यार्थियों के साथ भी सम्पर्क। बनाए रखना चाहिए। शैक्षिक प्रशासन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वो विद्यार्थियों से परिचित हो और विद्यार्थी उससे। शैक्षिक प्रशासक को अभिभावकों से भी सम्पर्क रखना चाहिए और इसके लिए उसे विद्यालय में अभिभावक–शिक्षक संघ (Parents & teacher Association) की स्थापना करना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रधानाध्यापक को शिक्षा विभाग तथा अन्य प्रशासनिक विभागों से भी सम्पर्क रखना चाहिए।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

8) अन्य कार्य – इन सबके अतिरिक्त प्रधानाध्यापक पर कई अन्य उत्तरदायित्व भी होते हैं जैसे विद्यालय फर्नीचर, शिक्षण–सामग्री, पुस्तकों आदि का क्रय करना, विद्यालय भवन, खेल के मैदान, पुस्तकालय, प्रयोगशालाओं आदि का उचित उपयोग करना, पाठ्य पुस्तकों का चयन करना, परीक्षा की व्यवस्था करना, कार्यालय के कार्य को प्रभावशाली बनाना आदि।

Unit :– 5.4 Annual school plan and Preparation of time & table, Continuous and Comprehensiven Evaluation (CCE) (वार्षिक स्कूल योजना और समय–सारणी तैयार करना, सतत और व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) :– यह स्वीकार किया जाता है कि सबसे प्रभावी संगठन वे हैं जो अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों को स्पष्ट करने के साथ–साथ उन लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कॉर्पोरेट, सहयोगी और व्यापक योजना में संलग्न होने पर बहुत जोर देते हैं। स्कूल भी एक संगठन है और इसी तरह प्रभावी होने की जरूरत है। ऐसा होने के लिए, इसे अपने सभी भागीदारों को अपने उद्देश्यों और उद्देश्यों के स्पष्टीकरण और बयान में शामिल होने और उन्हें प्राप्त करने के लिए रणनीतियों पर सहमत होने की आवश्यकता है। स्कूल–आधारित योजना सबसे महत्वपूर्ण साधन है जिसके माध्यम से यह किया जाता है।

स्कूल को प्रभावी रूप से आने और स्कूल सुधार को बढ़ावा देने में सहायता करने के लिए, शिक्षकों, प्रबंधन बोर्डों और माता–पिता की कभी–कभी अलग–अलग अपेक्षाओं के बीच सामंजस्य स्थापित करने के लिए एक रणनीति आवश्यक है। सहयोगी स्कूल योजना और स्कूल योजना का निर्माण ऐसी रणनीति के विकास के लिए एक रूपरेखा प्रदान कर सकता है। स्कूल योजना स्कूल के शैक्षिक दर्शन, उसके उद्देश्य और उन्हें कैसे प्राप्त करने का प्रस्ताव करती है, का एक विवरण है। यह कुल पाठ्यक्रम और स्कूल के संसाधनों के संगठन के साथ संबंधित है, जिसमें स्टाफ, स्थान, सुविधाएं, उपकरण, समय और वित्त शामिल हैं। इसमें इस तरह के प्रमुख मुद्दों पर स्कूल की नीतियां शामिल हैं: छात्र मूल्यांकन, विशेष आवश्यकताएं, रिकॉर्ड–कीपिंग, स्टाफ विकास, शिक्षकों की तैयारी, गृहकार्य, हेवियर कोड, घर–स्कूल लिंक, लड़कियों और लड़कों के लिए पाठ्यक्रम में समान अवसर, अंतरसांस्कृतिक शिक्षा, स्वास्थ्य और सुरक्षा मानक है , जबकि स्कूल योजना स्कूल के अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों के पालन को सुनिश्चित करेगी, यह सभी भागीदारों को जागरूक होने और शिक्षा प्रणाली के बताए गए अति–अभिव्यक्त उद्देश्यों की सदस्यता लेने में सक्षम बनाएगी।

- कानून द्वारा
- पाठ्यक्रम दिशानिर्देशों में
- शिक्षा और विज्ञान विभाग के परिपत्रों में
- स्वीकृत राष्ट्रीय नीति रिपोर्ट और दस्तावेजों में।

स्कूल योजना का अनिवार्य उद्देश्य स्कूल की प्रभावशीलता की उपलब्धि के साथ–साथ स्कूल सुधार के लिए एक महत्वपूर्ण समर्थन है। यह स्कूल को अपने घोषित लक्ष्यों और उद्देश्यों को प्राप्त करने में मदद करेगा जो विद्यार्थियों की वर्तमान और प्रत्याशित जरूरतों को पूरा करने के लिए दृढ़ता से निर्देशित होंगे। यह पूरे स्कूल में शिक्षण और सीखने में गुणवत्ता सुनिश्चित करने में मदद करेगा। प्रभावशीलता प्राप्त करने में मदद करने के लिए, स्कूल योजना स्कूल गतिविधि के उन क्षेत्रों की ओर ध्यान आकर्षित करेगी जिन्हें प्रभावशीलता सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक माना जाता है। निम्नलिखित स्कूलों की महत्वपूर्ण विशेषताएं मानी जाती हैं जो प्रभावी हैं:

- प्रिंसिपल द्वारा उद्देश्यपूर्ण नेतृत्व
- पाठ्यक्रम योजना और विकास
- उपयुक्त संचार संरचनाएं
- शिक्षक – कक्षा की तैयारी
- बौद्धिक रूप से चुनौतीपूर्ण शिक्षण
- मूल्यांकन और रिकॉर्ड

स्कूल योजना समग्र रूप से स्कूल के काम के लिए और पूरे स्कूल की प्रगति और विकास के मूल्यांकन और रिपोर्टिंग के लिए एक आधार के रूप में काम करेगी।

समय सारणी (Timetable) :– सबसे पहले, एक समय सारिणी एक प्रकार का कार्यक्रम है जो दर्शाता है कि विशिष्ट घटनाएं कब होंगी। यह एक योजना है जो दर्शाती है कि किस समय कुछ गतिविधियाँ होंगी। इसलिए, एक समय सारिणी आगे की योजना बनाने में बहुत उपयोगी है। समय सारिणी उस क्रम को बताती है जिसमें घटनाएँ होंगी। स्कूल से संबंधित गतिविधियों के प्रबंधन के लिए एक स्कूल समय सारिणी है। यह छात्रों, शिक्षकों, कमरों और अन्य संसाधनों के लिए उपयोगी है। एक स्कूल समय सारिणी आमतौर पर हर हफ्ते या हर पखवाड़े में साइकिल चलाती है।

समय सारिणी का महत्व (IMPORTANCE OF TIMETABLE) :– एक स्कूल समय सारिणी निश्चित रूप से एक उपयोगी उपकरण है। इसका महत्व निम्नलिखित कारणों से है:

पाठ्यचर्या संगठन (Curriculum Organization) :– एक स्कूल समय सारिणी ने अवधि की लंबाई को परिभाषित किया है। इसमें प्रत्येक अवधि के लिए विशिष्ट विषय भी हैं। इसलिए, यह प्रशासकों को अधिकांश पाठ्यक्रम भागों में पर्याप्त संसाधन वितरित करने की अनुमति देता है। एक अच्छी समय सारिणी का संगठन ऐसा है कि महत्वपूर्ण विषय सबसे अच्छे समय पर हों.

.छात्र संगठन (Student Organization) :– एक समय सारिणी छात्रों को कक्षा अवधि के समय के बारे में सूचित करती है। इसके अलावा, यह उन्हें प्रत्येक वर्ग अवधि की अवधि जानने की भी सुविधा देता है। स्कूल समय सारिणी के बिना, छात्र ठीक से तैयारी नहीं कर पाएंगे।

भ्रम को कम करना (Reducing Confusion) :– एक अच्छा स्कूल समय सारिणी शिक्षकों के लिए भ्रम को कम करता है। एक स्कूल समय सारिणी शिक्षकों को अपनी दिनचर्या ठीक से बनाने की अनुमति देती है। इसलिए शिक्षक सहज महसूस करते हैं। एक और फायदा यह है कि शिक्षक गलतियों को भी दूर कर सकते हैं।

महत्वपूर्ण दिनचर्या (Critical Routines) :– इन सबसे ऊपर, सबसे महत्वपूर्ण कारण एक दिनचर्या विकसित करना है। यह दिनचर्या सभी छात्रों और कर्मचारियों के लिए है। शिक्षकों को छात्रों के लिए दिनचर्या विकसित करनी चाहिए। प्रशासकों को यह बताना चाहिए कि छात्र कक्षा के लिए कब और कहाँ जाते हैं। साथ ही प्रशासकों को यह बताना चाहिए कि कौन सा शिक्षक किस कक्षा को पढ़ाएगा।

समय–सारणी के प्रकार –

(1) शिक्षक के अनुसार (Teacher – wise)

(2) कक्षा के अनुसार (Class – wise)

(3) विषय के अनुसार (Subject Activities)

समय–सारणी के उद्देश्य – इसके उद्देश्य निम्न हैं–

(1) विद्यालय के विद्यार्थियों को वर्षभर कार्य में व्यस्त रखना।

(2) विद्यालय के पाठ्यक्रम को निर्धारित समय के अन्तराल में ही पूर्ण करना।

(3) विद्यालय की समय–सारणी के अन्तर्गत शिक्षकों को उनकी मानसिक सामर्थ्य एवं क्षमता के अनुसार अध्यापन कार्य देना।

(4) विद्यालय के अन्तर्गत पाठ्यक्रम का विषय विभाजन बच्चों की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति के अनुरूप ही करना चाहिए।

(5) विषय को उसकी उपयोगिता एवं कठिनाई के आधार पर समय एवं स्थान की व्यवस्था करना है।

(6) छात्र एवं अध्यापक को अपने कार्य के प्रति सजग बनाना।

(7) कम समय में अधिक लाभ उठाना।

(8) विद्यालय के अन्तर्गत व्यवस्थित एवं योजनाबद्ध कार्य का संचालन करना।

(9) विद्यालय में होने वाली पाठ्यक्रम–सहगामिनी क्रियाओं को उचित स्थान देना।

(10) प्रधानाध्यापक के निरीक्षण कार्य को सरल बनाना।

समय सारणी बनाते समय सावधानियाँ – समय–सारणी का निर्माण करते समय अग्रलिखित सावधानियों पर ध्यान दिया जाय –

(1) समय–सारणी सरल और स्पष्ट हो। समय–सारणी का निर्माण इस ढंग से किया जाय, जिसे छात्र सफलतापूर्वक समझ सकें।

(2) समय–सारिणी में इस प्रकार की व्यवस्था हो कि छात्रों को प्रत्येक घण्टे में एक कक्षा से दूसरी कक्षा में नहीं जाना पड़े। इससे समय की बचत होती है।

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

(3) समय–सारणी इस प्रकार की हो कि जिसमें अध्यापक तथा छात्रों के मध्य किसी प्रकार का संघर्ष न हो।

(4) समय–सारणी अत्यधिक जटिल न हो, उसमें लचीलापन भी हो।

(5) समय–सारणी निर्माण में ग्रामीण आवश्कताओं को भी ध्यान में रखा जाय।

(6) समय–सारणी के निर्माण में इस बात को भी ध्यान रखा जाय कि छात्र और अध्यापकों में अधिक सम्पर्क की सम्भावना हो।

समय–सारणी के निर्माण में कठिनाइयाँ – विद्यालय की समय–सारिणी का निर्माण करना कोई सरल कार्य नहीं है। इसके निर्माण में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता । इनमें से कुछ प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित हैं–

1. अध्यापकों का अभाव – समय–सारणी निर्माण में सबसे अधिक कठिनाइयों अध्यापकों के अभाव के कारण आती है। अध्यापकों की कमी के कारण समय–सारणी के निर्माण के सिद्धान्तों को नहीं अपनाया जा सकता। परिणामस्वरूप छात्रों को उनकी रुचि के अनुकूल विषय नहीं मिल पाते और इसी प्रकार अध्यापकों को भी अपनी रुचि के अनुसार शिक्षण के अवसर प्राप्त नहीं होते। अतः इसके निवारणार्थ ध्यान दिया जाय।

2. कक्षाओं को अभाव – जब विद्यालय में पर्याप्त कमरे और विशेष कक्ष नहीं होते तब समय–सारणी का निर्माण करना कठिन हो जाता है। अतः प्रधानाध्यापक को इस पर ध्यान देना चाहिए।

3. भौतिक साधनों का अभाव – पर्याप्त फर्नीचर, अध्यापक कक्ष तथा पुस्तकालय आदि का अभाव भी एक कठिनाई है। इन अभावों की पूर्ति की जाय।

4. विद्यालय में छात्रों की अधिक संख्या – जब विद्यालय में छात्रों की संख्या अत्यधिक होती है तो समय–सारणी बनाना असुविधाजनक हो जाता है। अतः छात्र–संख्या विद्यालय क्षमता के अनुसार होनी चाहिए।

5. अंशकालीन अध्यापकों की नियुक्ति – अंशकालीन अध्यापकों (Part-time teachers) की नियुक्ति के कारण भी समय–सारणी बनाने में बाधाएँ आती हैं क्योंकि उन्हें समय–समय पर प्रशिक्षण संस्थाओं में जाना पड़ता है। अतः स्थायी अध्यापक ही नियुक्त किये जायें।

सतत और व्यापक मूल्यांकन (सीसीई)(Continuous and Comprehensive Evaluation (CCE) :– सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन बच्चों के वृद्धि और विकास के समस्त क्षेत्रों का सतत एवं नियमित आकलन है। इसके द्वारा विभिन्न विधियों एवं उपकरणों के माध्यम से बच्चों का आकलन किया जाता है। इसे अच्छी तरह समझने के लिए हम सतत एवं व्यापक मूल्यांकन में मौजूद तीन शब्द सतत, व्यापक और मूल्यांकन को जानते हैं।

मूल्यांकन – मूल्यांकन कक्षा अधिगम प्रक्रिया के साथ–साथ बच्चों के सीखने की गति, अवधारणा, ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल, व्यवहार, अनुभव आदि को जानने के लिए योजनाबद्ध तरीके से साक्ष्यों का संकलन, विश्लेषण, व्याख्या एवं सुझाव देने की प्रक्रिया है। साक्ष्यों का यह संकलन कक्षा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के समय शिक्षकों द्वारा विभिन्न विधियों व उपकरणों के माध्यम से किया जाता है। बच्चों का मूल्यांकन बहुत जरूरी हैं। मूल्यांकन–प्रक्रिया जितनी बेहतर होगी विकास की गति भी उतनी ही बेहतर होगी क्योंकि मूल्यांकन के आधार पर आवश्यक सुधार कर उपलब्धि स्तर को बढ़ाया जा सकता है।

सतत मूल्यांकन – सतत का शाब्दिक अर्थ होता है – लगातार। इसप्रकार सतत मूल्यांकन लगातार चलने वाली प्रक्रिया हैं। इसमें बच्चे का आकलन सतत् एवं नियमित रूप से किया जाता है जो पूरे वर्ष औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से चलता रहता है।

सतत आकलन एवं कक्षा शिक्षण प्रक्रिया दोनों साथ–साथ चलने वाली प्रक्रिया है। इसमें न सिर्फ विषय आधारित बल्कि सह–पाठ्यक्रम गतिविधियों का भी नियमित रूप से आंकलन किया जाता है।

व्यापक मूल्यांकन – व्यापकता से आशय बच्चे के समस्त कौशलोंध्गुणों के विकास से हैं जिसमे शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक एवं संवेगात्मक विकास भी सम्मिलित हैं जो एक अच्छा नागरिक बनने के लिए आवश्यक होता है। इन गुणों का विकास धीमी गति से होता है तथा वांछित परिवर्तन लाने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता होती है। व्यापक आकलन अवलोकन, चर्चा, साक्षात्कार आदि के माध्यम से किया जा सकता है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की विशेषताएँ/महत्व – सतत एवं व्यापक मूल्यांकन द्वारा बच्चे के विकास के सभी पहलुओं का पता चलता हैं। इसके द्वारा शिक्षक को सीखने के दौरान छात्रों को होने वाली कठिनाइयों का पता चलता हैं। शिक्षक अनेक गतिविधियों एवं उपकरणों के

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

माध्यम से यह पता करते हैं कि बच्चों ने क्या सीखा एवं उन्हें सीखने में कहाँ मदद की आवश्यकता है। इस प्रकार वे बच्चों के सीखने की प्रक्रिया को आसान बनाते हैं। सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की विशेषताएँध्महत्त्व निम्नलिखित हैं –

- यह छात्रों के लिए सीखने की प्रक्रिया को आसान बनाता हैं।
- यह छात्रों द्वारा सीखने के क्रम में आने वाली कठिनाइयों का पता लगाने में सहायक हैं।
- इसके द्वारा सीखने के दौरान छात्रों को होने वाली कठिनाइयों को कम किया जाता हैं।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के उद्देश्य – सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

1.विभिन्न विषयों में निश्चित समय उपरांत बच्चों की प्रगति जानना।

2.बच्चों के व्यवहार में हुए परिवर्तनों का पता लगाना।

3.प्रत्येक बच्चे को सीखने और समुचित विकास में मदद करना।

4.सृजनशीलता को बढ़ावा देना।

5.बच्चे की व्यक्तिगत और विशेष जरूरतों का पता लगाना।

6.बच्चों को सीखने में कठिनाइयों को दूर करने के लिए अध्यापन की उपयुक्त योजना बनाना।

7.बच्चों की रुचि जानना।

8.कक्षा में चल रही सीखने–सिखाने की प्रक्रिया को बेहतर बनाना।

9.बच्चों में परीक्षा के प्रति व्याप्त भय व दबाव को दूर करना और व स्व – आकलन (Self Assessment) के लिए प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष – शिक्षा का संबंध बच्चों के समुचित विकास से हैं। बच्चों के समुचित विकास के लिए विकास के सभी पहलुओं का निरंतर और व्यापक आकलन आवश्यक हैं।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन (Continuous and Comprehensive Evaluation – CCE) – बच्चों के विकास के सभी पहलुओं के मूल्यांकन की एक प्रणाली हैं। यह नियमित एवं निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो कक्षा शिक्षण अधिगम प्रक्रिया के साथ–साथ चलती हैं। इसके द्वारा यह पता लगाया जाता हैं कि बच्चों ने क्या सीखा, उन्हें सीखने में क्या–क्या कठिनाइयाँ आ रही हैं? बच्चों को उनकी क्षमता व रुचि के अनुसार सीखने का पर्याप्त अवसर दिया जाता है ताकि उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास हो सके।

Unit :– 5.5 Maintenance of school – record – progress report, cumulative record, case history (स्कूल–रिकॉर्ड का रखरखाव – प्रगति रिपोर्ट, संचयी रिकॉर्ड, मामलों के इतिहास) – संचयी रिकॉर्ड कार्ड का रख –रखाव तब शुरू होना चाहिए जब छात्र स्कूल में प्रवेश करता है और छात्र को एक स्कूल के भीतर कक्षा से कक्षा तक और स्कूल से स्कूल तक उसका अनुसरण करना चाहिए क्योंकि वह अपनी प्रगति जारी रखेगा कक्षा शिक्षक संचयी रिकॉर्ड बनाए रखेगा। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि वह छात्रों के साथ अधिक समय बिताता है, वह उन्हें विभिन्न पहलुओं से आंकने की बेहतर स्थिति में होगा वह एक डायरी या नोटबुक रखेगा जिसमें वह समय–समय पर अपने छात्रों के बारे में अपनी टिप्पणियों को नोट करेगा। वर्ष के अंत में वह संचयी रिकॉर्ड कार्ड (सीआरसी) में आवश्यक प्रविष्टियां करेगा। यह बहुत ही वांछनीय है कि वह अपने उन सहयोगियों से परामर्श करें जो विद्यार्थियों को भी जानते हैं। इन प्रविष्टियों को सावधानीपूर्वक विचार करने के बाद किया जाना चाहिए।

संचयी रिकॉर्ड कार्ड का अर्थ (Meaning of Cumulative Record Card) :– एक संचयी रिकॉर्ड कार्ड वह होता है जिसमें एक छात्र या छात्र के अध्ययन के दौरान समय–समय पर किए गए विभिन्न मूल्यांकन और निर्णयों के परिणाम होते हैं। आम तौर पर इसमें लगातार तीन साल शामिल होते हैं। इसमें बच्चे या शिक्षित के जीवन के सभी पहलुओं के बारे में जानकारी शामिल है – शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, नैतिक और मनोवैज्ञानिक। यह एक बच्चे के व्यक्तित्व की यथासंभव व्यापक तस्वीर देने का प्रयास करता है। ''विभिन्न तकनीकों – परीक्षण, सूची, प्रश्नावली, अवलोकन, साक्षात्कार, केस स्टडी आदि के उपयोग के माध्यम से छात्र पर समय–समय पर एकत्रित महत्वपूर्ण जानकारी।''

मूल रूप से एक संचयी रिकॉर्ड कार्ड एक दस्तावेज है जिसमें यह एक स्थान पर किसी विशेष छात्र या छात्र के बारे में संचयी रूप से उपयोगी और विश्वसनीय जानकारी दर्ज की जाती है। इसलिए स्कूल में अपने लंबे प्रवास के दौरान उसकी मदद करने के उद्देश्य से संबंधित

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow

व्यक्ति की एक संपूर्ण और बढ़ती हुई तस्वीर प्रस्तुत करना। और जाते समय यह उसकी शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत–सामाजिक प्रकृति की अनेक समस्याओं के समाधान में सहायता करता है और इस प्रकार उसके सर्वोत्तम विकास में सहायता करता है।

केस हिस्ट्री मूल रूप से एक फाइल को संदर्भित करता है जिसमें एक व्यक्तिगत क्लाइंट या समूह से संबंधित प्रासंगिक जानकारी होती है। मनोचिकित्सा, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य देखभाल और सामाजिक कार्य के क्षेत्रों सहित पेशेवर संगठनों की एक विस्तृत श्रृंखला द्वारा केस इतिहास का रखरखाव किया जाता है। निम्नलिखित जानकारी में केस हिस्ट्री की दो औपचारिक परिभाषाओं, केस हिस्ट्री की मूल सामग्री और प्रारंभिक केस हिस्ट्री फाइलों के लिए जानकारी कैसे प्राप्त की जाती है, पर संक्षेप में चर्चा की गई है। इतिहास के मामले में निहित जानकारी का प्रकार उस संगठन के आधार पर भिन्न हो सकता है जो रिकॉर्ड बनाए रखता है। उदाहरण के लिए, जबकि एक चिकित्सा क्लिनिक को अपने ग्राहकों के बारे में उनके मामले के इतिहास में गहन चिकित्सा जानकारी शामिल करने की आवश्यकता होगी, सामाजिक कार्यकर्ताओं को केवल अधिक सामान्यीकृत चिकित्सा जानकारी (यदि कोई हो) शामिल करने की आवश्यकता हो सकती है।

इसके बजाय, उन्हें क्लाइंट की सेवाओं के इतिहास, क्लाइंट की जांच, या क्लाइंट से जुड़े परामर्श सत्र जैसी चीजों से संबंधित अधिक गहन जानकारी की आवश्यकता हो सकती है। किसी भी मामले में, इतिहास के मामले में अक्सर शामिल की जाने वाली कुछ सबसे सामान्य प्रकार की जानकारी इस प्रकार हैः

1.बुनियादी सांख्यिकीय डेटा (ग्राहक का नाम, उम्र, लिंग, पता, फोन नंबर, पेशा, वैवाहिक स्थिति, और ग्राहक आईडी नंबर)।

2.ग्राहक की सेवाओं का इतिहास

3.ग्राहक मामले से संबंधित जांच

4.पिछले और वर्तमान उपचार या परामर्श सत्र

5.जांच के परिणाम

6.बीमारियों का इतिहास

7.शिकायतों का इतिहास और उनका समाधान

8.रेफरल का इतिहास

UP066-Usha Charitable Trust, Lucknow